* श्रीद्वारकेशो जयति *

श्री द्वा० ग्र० माला का पुष्प १३

प्राचीन वार्ता-रहस्य

तृतीय भाग

—*×*—

श्री हरिरायजी कृत भाव प्रकाश, (व्रजभाषा) मूल
वार्ता एवं प्रासंगिक ऐतिहासिक विवेचन
(गुजराती) तथा संस्कृत वार्ता
मणि माला सहित,

—:*:—

सम्पादक—
द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख

प्रकाशक—
श्री विद्या विभाग कांकरोली

वि० सं० २००४] [श्री वल्लभाब्द ४६९

दो शब्द

—:×:—

सं० १९९८ के बाद (लगभग ५ वर्ष के उपरान्त) आज पाठकों के सामने प्राचीन वार्ता रहस्य का यह तृतीय भाग बड़ी कठिनाइयों के साथ समुपस्थापित किया जा सका है। कठिनाइयों का दिग्दर्शन विज्ञ पाठकों को क्या कराया जाय ? उसका आपाततः परिज्ञान इसी से किया जा सकता है- कि सर्वविध चेष्टाएँ करते रहने पर भी-- हम प्रेस, और कागज की अप्राप्यता वश अनेक अभिनव ग्रन्थों के साथ इस ग्रन्थ को भी प्रकाश में न लासके। इस ग्रन्थ के इस छोटे से खण्ड को छपा ने में जब लगभग सार्ध वर्ष का लम्बा समय लगाना पड़ा कई प्रेसों का दरवाजा खटखटाना पड़ा और मुँह माँगा दाम देना पड़ा, तब अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन की कथा तो दूरापास्त है। यह तो प्रकाशक का या प्रकाशनीय ग्रन्थ का अहोभाग्य कहिये-- जो श्री विट्ठलनाथ प्रेस कोटा के प्रबन्धक मित्रवर पं० श्री लक्ष्मणशास्त्री जी ने साम्प्रदायिकता के नाते इसे छपा देना अंगीकार कर लिया और आई हुई उन विषमता-, ओं को पार कर हमारे मनोरथ को पूरा कर दिया जिन्हें भुक्त भोगी ही जान सकता है। अस्तु कुछ भी हुआ हमारे प्रकाशन की शृंखलास्थित रह सकी और हम पुराने ग्राहकों के संमुख अपनी परवशता वश प्राप्त हुई अकर्मण्यता को दूर हटाने के लिये ' दोशब्द ' लिखने का साहस कर सके यह क्या कम सौभाग्य है। मुद्रण- साहित्य सामग्री की अनुपलब्धिरूप विभीषिका यदि भगवत्कृपा से शीघ्र ही अपगत होसकी तो इस

विलम्ब का अच्छा उत्तर हम अगले समय में दे सकेंगे ऐसी आशा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ जो द्वा. ग्र. माला के १३ वें पुष्पका तृतीय भाग है-- में प्रथम भाग की आठ वार्ताओं के आगे की ९ से १६ संख्या तक की "८४ वैष्णवों की वार्ताओं" की वार्ताएँ उपलब्ध साहित्य के साथ पूर्ववत् प्रकाशित की जारही हैं-- केवल मात्र द्वि० भाग के समान गुजराती विभाग को साथ में अनुक्रम रूप में न दे कर पृथक् परिशिष्ट रूप में प्रकाशित करने की विशेषता को लेकर। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रस्तुत विभाग का सम्पादन पहिले के समान ही मित्रवर द्वारकादास जी पुरुषोत्तम दास जी परिख ने ही किया है-- मुझे तो प्रूफ देखने का भी अवसर अस्वास्थ्य के कारण अधिगत नहीं हो सका है-- यद्यपि किसी मानसिक उथल पुथल के कारण श्रीयुत परिख जी ने स्वतन्त्र प्रकाशक बनकर एक प्रकार से विद्या विभाग से अपना सम्बन्ध-विच्छेद* प्रकाशित कर दिया है-- जो वाञ्छनीय नहीं है, फिर भी प्रस्तुत वार्ता साहित्य के प्रकाशन में संस्था के साथ उनका विसम्वाद नहीं है फलस्वरूप श्री प्रभु ने चाहा तो सम्पूर्ण वार्ता सुन्दर रूप में एक साथ ही प्रकाशित हो जाने का अवसर शीघ्र ही आ सकेगा।

स्वीकृत प्रणाली के अनुसार प्रस्तुतभाग में मूलवार्ताएँ, उनके साथ श्रीहरिरायजी-कृत भाव प्रकाश, परिशिष्ट में गुजराती- विवेचन- जिसे अपनी खोज पूर्ण, भावुकता परिप्लुत विद्वत्ता से ऐतिहासिक रूप में परिखजी ने प्रस्तुत किया है और मठेश श्रीनाथ देव कृत 'संस्कृत वार्ता मणिमाला' की

* देखो नव प्रकाशित- 'हरिरायजी महाप्रभुनुं जीवन चरित्र' भूमिका पत्र ३५

प्रासंगिक ८ वार्ताएँ उपस्थित की जा रही है। 'सं० वा० मणिमाला' की आदर्श प्रति विद्या विभाग के सरस्वती भंडार में अभी तक एक ही विद्यमान थी, जिसके आधार पर यथोपलब्ध वार्ताएँ यथा मति संशोधित कर प्रकाशित की गई हैं। अब जब यह संस्कृत वार्ताएँ मुद्रित हो चुकी हैं– एक अन्य हस्त लिखित प्रति स्व० त्रिगृह श्री गोवर्धन लाला जी मथुरा के विशाल ग्रन्थ संग्रह के साथ प्राप्त हुई है। यह कहना अस्थाने न होगा कि स्वकीय विद्याप्रेम, एवं संग्रह प्रियता होने के कारण विद्याविभागाध्यक्ष, शु. सं० तृतीय पीठाधीश्वर गो० श्री १०८ व्रजभूषण लाल जी महाराज ने जिस तत्परता से यह अमूल्य ग्रन्थ संग्रह उनके एक मात्र स्वर्गीय पुत्र श्री बलदेव लाला जी 'प्रेमकवि' की पतिवियोग विह्वलापत्नी के स्वत्व का पूर्ण संरक्षण करते हुये स्वकीय विद्याविभाग के लिये प्राप्त कर लिया है। अन्यथा शु० सम्प्रदाय के एक अन्यतम विद्वान का यह अनुपम ग्रन्थ संग्रह अन्य ग्रंथ संग्रहों की भाँति न जाने किस दिशा का पथिक बन जाता ? कुछ कहा नहीं जा सकता। अवसर पर चूक जाने की साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों ने कुछ पैसों के लोभ में पडकर न जाने कितने ऐसे अक्षय, अमूल्य, अनुपम एव अनन्त ग्रंथ भंडारों को हस्तान्तरित कर कहाँ का कहाँ पहुँचा दिया है और इस प्रकार शु० सा० साहित्य की जो दुरवस्था की है वह अकथनीय होते हुये भी लाञ्छनीय है। वास्तव में इस प्राप्त संग्रह को देखने वाला विद्वान् व्यक्ति महाराज श्री की गुणवृत्ति की भूरि २ प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता अस्तु।

मठेश श्री नाथ देव के सम्बन्ध में कुछ विशेष वृत्त (प्र० भाग की अपेक्षा) प्राप्त नहीं हुआ है जो हुआ है वह

प्रामाणिक रूप में पुष्ट हो जाने पर किसी अन्य स्थल पर प्रकाशित किया जायगा।

प्रेस की दूरी, स्वास्थ्य का अभाव और अन्य कई ऊल जलूल आपत्तियों के कारण प्रस्तुत भाग को आकर्षक नहीं बनाया जा सका है–जिसके लिये मानसिक परिताप है और तो और प्रूफ संशोधन भी अपेक्षाकृत ठीक नहीं हो पाया है। फिर भी युद्धजन्य प्रकाशन के अभाव में यत्किञ्चित् सामग्री लेकर हम पाठकों के सन्मुख उपस्थित होने का साहस कर रहे हैं। यदि अनुकूलता मिल गई जैसा कि निश्चय और विश्वास है तो सम्पूर्ण वार्ताएँ एक ही ग्रन्थ के रूप में उक्त साहित्य के साथ प्रकाशित की जायगी तब हम पाठकों से त्रुटियों के लिये क्षमा याचना करेंगे। ऐसी सदाशा है।

ॐ शान्तिः ३

निवेदकः—

प्रो॰ कण्ठमणि शास्त्री

संचालक

विद्या विभाग

काँकरोली

श्री कृष्ण जयन्ती

सं॰ २००४

गो. श्री व्रजभूषणात्मज

चि. श्री गिरिधरगोपाल

सरैया आर्ट प्रीन्टरी, अमदावाद.

विषयानुक्रमणिका

(क) व्रजभाषा—

क्रम सं०	वार्ता	पृष्ठ
९	सेठ पुरुषोत्तम दास छत्री की वार्ता	१
१०	,, ,, की बेटी रुक्मिणी की वार्ता	१९
११	,, ,, के बेटा गोपालदास की वार्ता	२४
१२	रामदास सारस्वत ब्राह्मण ,, ,,	२६
१३	गदाधरदास कपिल सारस्वत ,, ,,	३५
१४	बेणीदास माधवदास दो भाई की वार्ता....	४६
१५	हरिवंश पाठक सारस्वत	५४
१६	गोविन्ददास भल्ला की वार्ता	५८

(ख) गुजराती विवेचन—

(ग) संस्कृत वार्ता मणिमाला

विद्याविभाग कांकरोली

की

श्री का० ग्र० माला द्वारा प्रकाशित और प्राप्य ग्रन्थ

सं०	नाम		मूल्य
१	बुरहानपुर आर्य समाज शास्त्रार्थ	(हिन्दी)	।)
२	पुष्टि मार्गीय वैष्णवान्हिक	(गुजराती)	=)।
३	मङ्गलमणि माला—१२ गुच्छ	(संस्कृत हिन्दी)	प्र० =)
४	कविता कुसुमाकर प्र० भाग	(,, ,,)	॥)
५	साम्प्रदायिक ग्रन्थ सूची	(हिन्दी)	।)
६	सम्प्रदाय प्रदीप सजिल्द	(संस्कृत हिन्दी)	२॥)
७	रसिक रसाल	(हिन्दी)	१॥)
८	काँकरोली	(एकत्र चारों भाग सचित्र-हिन्दी)	५)
९	प्राचीन वार्ता रहस्य प्र० भाग	(हि० गु०)	१।)
१०	कांकरोली दिग्दर्शन	(गुजराती)	
११	ध्यान मञ्जूषा	(हिन्दी)	।)
१२	श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्ता श्रीवल्लभ वंशावली	(हि.गु.) (हिन्दी)	२)

१३ जगतानन्द (हिन्दी) १॥।)

१४ पुष्टिमार्ग (गुजराती) १।)

१५ अनन्याश्रय अने असमर्पित त्याग ,, ।)

१६ श्री हरिरायजी महाप्रभुजीनूँ जीवन चरित्र ,, २)

१७ गोपी प्रेम पीयूष प्रवाह ,, ॥)

१८ समस्या पूर्ति— तीन भाग हिन्दी ॥) ।) ॥।)

१९ समस्या कुसुमाकर प्र० द्वि० कुसुम =) ≡)

२० घनाक्षरी नियम रत्नाकर ।)

२१ सङ्गीत विश्व दर्शन ≡)

२२ कन्या शिक्षण ।)

२३ विद्या विभाग कांकरोली ।)

२४ गो० श्री बृजभूषणलालजी महाराज का चित्र =)

प्राचीन वार्ता-रहस्य
तृतीय भाग

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तमदास कासी में रहते, तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं।

—:*:—

श्रीहरिरायजी कृत भाव प्रकाश

सेठ पुरुषोत्तमदास कों दामोदरदास संभरवारे को संग है। जब तांबे को पत्र बचाइवे को कासी गए ता दिनतें सेठकों श्रीआचार्यजी के दरसन की आरति भई। सो श्रीआचार्यजी पहली पृथ्वी परिक्रमा करि कासी पधारे तब सेठ ने मनिकर्निका घाट पर श्रीआचार्यजी के दरसन पाये। सो कृष्णदास सों पूछेः- श्रीआचार्यजी दछिन देस में कृष्णदेव राजा की सभा में मायावाद- खंडन किये हैं, सोई हैं? तब कृष्णदास मेघन ने कही यही हैं। तब सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीआचार्यजी के सन्मुख जाइ दंडोत किए, बिनती करी। महाराज! कृपा करके सरन लीजे। कृपा करि घर पावन करिए। तब श्रीआचार्यजी दैन्यता देखि सेठ पुरुषोत्तमदास के घर पधारे। सेठकों, सेठकी बेटी रुकिमिनी को, सेठके बेटा गोपालदास आदि सबकों नाम सुनाए ब्रह्मसंबंध कराए। तब सेठनें बिनती करी, महाराज! अब हमकों कहा कर्तव्य है? तब श्रीआचार्यजी कहे, भगवत्

सेवा पुष्टिमार्ग की रीतिसों करो। सो सेठ के घर श्रीमदन-मोहन जी ठाकुर हते।

पास हजार दस पन्द्रह हजार रुपैया हतो सो घर बनाए। सो नींव में तें श्रीमदनमोहनजी ठाकुर निकसे। और द्रव्य बहुत निकस्यो, करोड़धुजीकहाए। साठ करोड़ द्रव्य पाये। सो पिता कछुक दिन श्रीमदनमोहनजी की पूजा करि देह छोड़े। पीछे सेठने पूजा बहोत दिन लों करी, द्रव्य बहोत कमाए। सो श्रीमदनमोहनजी को श्रीआचार्यजी ने पंचामृत स्नान कराइ पाट बैठाये, सेठ के माथे पधराए।

सेठ का आधिदैविक स्वरूप

सो सेठ पुरुषोत्तमदास लीला में श्रीस्वामिनीजी की सखी हैं। इंदुलेखा इनको नाम है और सेठकी बेटी रुकमिनी इन्दुलेखा की सखी मादनी नाम है। और गोपालदास सेठ को बेटा, सो इंदुलेखा की सखी गानकला है। सो सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीमदनमोहनजी की राजसेवा करते। बावन बीड़ी को नेग हतो। याको कारन यह है:-- जो लीला में बीड़ा अरोगाइवे की सेवा इंदुलेखा की है। तातें पुरुषोत्तम-दास ने बावन बीड़ा राखे, जो श्रीठाकुरजी के भावतें बीस और बत्तीसबीड़ा श्रीस्वामिनीजी के भावतें। याको आसय यह जो श्रीठाकुरजी कों विस्वास प्रिय है। तातें बीसों बिस्वा निश्चयात्मक दृढ विश्वास जताइवे कों बीस बीड़ा श्रीठाकुरजी के भावतें। श्रीस्वामिनीजी कों शृंगार प्रिय है, तातें जुगल रूप के सिंगार सोरह दूने बत्तीस भये। याप्रकार श्रीस्वामिनीजीकों प्रसन्न किए। या प्रकार कहि (यह जताए जो) जितनी सेवा सेठ पुरुषोत्तमदास करते, सो भावपूर्वक करते। सामग्री वस्त्र आभूषण हू में।

और मदनमोहनजी की सेवा श्रीठाकुरजी के भावतें अधिक श्रीआचार्यजी महाप्रभु के भावतें करतें तातें श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइकें श्रीमदनमोहनजी के दोऊ चरन स्याम दरसन कराए। ताको आसय यह जो- सर्वाङ्ग गौर, सो तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कौ निजस्वरूप-श्रीस्वामिनीजी कौ श्रीअंगवर्ण। और चरन दोऊ स्याम, सो श्रीकृष्ण के श्रीअंगवर्ण। तामें चरन स्याम कौ अभिप्राय निकुंजादिक लीला में श्रीठाकुरजी दूसरे स्वरूप (श्री स्वामिनीजो) के चरन—आश्रित हैं। तातें श्रीठाकुरजी के भावतें श्रीआचार्यजी की सेवा दिखाए। या प्रकार सेठ पुरुषोत्तमदास पर अनुग्रह श्रीआचार्यजी किए।

सो श्रीमदनमोहनजी कों श्रीआचार्यजी ने पंचामृत स्नान कराइ पाट बैठारे, सेठ के माथें पधराए॥

वार्ता प्रसंग-१- और सेठ कासी मुख्य विस्वेस्वर महादेव, सो कासी के राजा हैं, तिनके दरसन कों कबहू नहिं जाते। सो एक दिन विस्वेस्वर-महादेव नें स्वप्न में सेठ पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो- गांव कौ नातो तुम नांहि राखत, तो वैष्णव कौ नातो तो राखो, कबहू हम कों महाप्रसाद तो दियो करो। तब सबेरे सेठ पुरुषोत्तमदास सेवा सों पहोंचिकें महाप्रसाद कौ डबरा बीरा ले विस्वेस्वर महादेव के देवालय कों चले। तब गांउ के लोग सब आश्चर्य ह्वै रहे जो-- सेठ कबहू नांहि आवते सो आजु क्यों आए ? सो कितने लोग संग सेठ के चले। सो सेठ महाप्रसाद कौ डबरा, बीड़ा आगें धरे, श्रीकृष्ण-स्मरण करिके उठि चले। तब बड़े बड़े सैव ब्राह्मण हते

सो सेठ पुरुषोत्तमदास सों कहे, तुम दंडवत् नमस्कार नांहिं किए? श्रीकृष्णस्मरण करि उठि चले सो उचित नांही। तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही, हमारे इन के भगवत्-स्मरण को ब्यौहार है। तुम पूछि लीजो। तुम सों विस्वेस्वर महादेव-जी कहेंगे।

सो उन ब्राह्मणन में एक ब्राह्मण महादेवजी कौ कृपापात्र हतो। सो उन ब्राह्मण सों महादेवजी ने कही। जो- हमने सेठ सों महाप्रसाद मांग्यो हतो। हमारे इनके भगवत्-स्मरन कौ ब्यौहार ही है। तातें इन सों और कछु मति कहियो। ता पाछें बड़े उत्सव के पाछें महाप्रसाद विस्वेस्वर महादेव कों ले जातें।

भाव प्रकाश- यह कहिवे कौ अभिप्राय यह जो- सेठ पुरुषोत्तमदास अब सेवक भए तब इनकी आज्ञा में सिगरे लोग द्रव्य अर्थ रहें। सो महादेवजी ने जाने जो अब सिगरे अनन्य होइगें। तो हमारो महातम हूं घटि जायगो, और भगवद् आज्ञा कलिकाल आयो, सो जीवन कों वहिर्मुख करने हैं।* और सेठ पुरुषोत्तमदास ने भक्ति फैलाई सो इनसों तो कछू चले नांही। तब महादेवजी ने यह उपाइ कियो, जो- सेठजी

*" त्वञ्च रुद्र! महा बाहो! मोहनार्थं सुरद्विषाम्।
पाषण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व सुर सत्तम?।"
ऐसे पुराणादि में कहे हुए अनेक वाक्य अत्र स्मरणीय हैं।

सम्पादक

तो महाप्रसाद देन जाँइ, ता करि सिगरे लोग महादेवजीके देवालय जान लागे। जो कोउ बरजे तो उत्तर करें- सेठजी सरिखे जात हैं तो हमारी कहा? महादेवजी बड़े भगवदीय हैं। या प्रकार जीव बहिर्मुख भए। परन्तु यह न जाने जो- सेठकों आज्ञा भई सो गए, परन्तु रुकमिनी गोपालदास कबहूं नांहि गए, हम कैसे जांइ! परन्तु सबकों उत्तम फल नाँहि देनो है। तातें सेठ पुरुषोत्तमदास ह्व गए।

वार्ता प्रसंग- २- और एक दिन विश्वेश्वर महादेवजी ने कालभैरव कों, कोतवाल कासीके हते तिनसों- कह्यो, जो सेठ पुरुषोत्तमदास वैष्णवन के घरतें अर्द्धरात्रिकों आवत हैं अबेरे सवेरे, सो सेठ पुरुषोत्तमदास के घर की चौकी दीजो। कोई छलवा, चोरादिक उपद्रव न करै। तब कालभैरव नित्य सेठ पुरुषोत्तमदास के घर की चौकी पहरा देते।

सो एक दिन वैष्णव के घरतें अर्द्धरात्रि समें सेठ पुरुषोत्तमदास आवत हे। सो घरके द्वार ऊपर तब काहुको देख्यो पाछें फिरिकें देखें तब पूछे जो-तू कौन है? तब कालभैरवने कहे जो मौकों महादेवजी ने तिहारे घर की चौकी पहरा देवे की कही है, सो नित्य चौकी देत हों। तब सेठ पुरुषोत्तमदास बोले नाँही किंवार दै घर में आए।

भाव प्रकाश- यह कहि कें यह जताए जो- सेठ एसे कृपापात्र भगवदीय हते। परन्तु वैष्णव के संग अर्थ आपु

चलाइ के जाते । तातें वैष्णव कौ संग अवस्य करनों । क हे तें श्रीआचार्यजी लिखे हैं " पोषकाभावे तु शिथिलम् " (अर्थात्) पोषक कौ अभाव होई तब मन सिथल व्है जाइ, भक्ति घटि जाइ । सो पोषण सत्संग तें होइ ।

और कालभैरव कों महादेवजी राखे सो यातें, जो-- कासी में भूत छुलावा बहोत, तथा चोरादिक । सो महादेवजी विचारे जो- मोकों भगवान् ने कासी को राज दियो है, जातें या गांव में अन्याव होइ सो मेरे माथें । तातें भगवदीय कौ कछू बिगार होइ तो भगवान् मोपर अप्रसन्न होइ जाँइ । और सेठजी हमकों महाप्रसाद (हू) कृपा करिकें दिए, हमारों तो कछू लेत नांहीं । तातें इतनी चौकसो* तो करी चाहिए । तातें कालभैरव सों चौकी पहरा की कहे । (सो यातें) जो कदाचित् कछु बिगार हू होइ तो दंड कालभैरव के माथें । तातें आपु नाँही दिए ।

वार्ता प्रसंग- २- और एक दछिन देस कौ ब्राह्मण कासी में आयो सो सेवी महादेवजी कौ कृपापात्र हतो । जब महादेवजी दरसन देंइ तब वह ब्राह्मण खान--पान करै । सो एसें करत जन्माष्टमी कौ उत्सव आयो ।

सो सेठ पुरुषोत्तमदास बडे मंडान सों जन्माष्टमी कौ उत्सव करते । सो महादेवजी जन्माष्टमी के दिन सेठ पुरुषोत्तम-दास के घर आए । सो नौमी कों नंदमहोत्सव पाछें दुपहर

---

* अन्य प्रतिओं में "चाकरी" शब्द भी है— सम्पादक

कों आए । तब ब्राह्मण कों दरसन भयो । तब वह ब्राह्मण नें विस्वेस्वर महादेवजी सों पूछे, जो– कालि तिहारो दरसन नांहि भयो । आजु दुपहर कों भयो, ताकौ कारन कहा ? तब महादेवजी ने कही– मैं जन्माष्टमी कौ उत्सव देखन कों (सेठ के घर) गयो हो, कालिह सवारे तें । सो आजु आयो । तब वह ब्राह्मण नें कही, जो– एसे सेठ कौन हैं ? जिनके घर तुम उत्सव देखन जात हो । तब विश्वेश्वर महादेवजी ने कही, जो– वे बड़े भगवद्‌भक्त हैं, हम सों श्रेष्ठ हैं ।

भाव प्रकाश– ताकौ यह अर्थ जो- सेठ पुष्टिमार्गीय भगवद्‌भक्त हैं, हम मर्यादामार्गीय हैं ।

तब ब्राह्मण ने कह्यो, जो– एसे भगवद्‌भक्त हम हूं को करो । महादेवजी ने कह्यो, सेठ पुरुषोत्तमदास के सेवक जाइ के होउ । वे नाम सुनावत है, उनकों श्रीआचार्यजी की आज्ञा है । तब वह ब्राह्मण ने कही, जो तुमहीं नाम सुनावो । तब महादेवजी ने कही, जो– हमारो दियो नाम फलेगो नांही ।

भाव प्रकाश– ताकौ अर्थ यह हमारो नाम दिए– मर्यादाभक्ति कौ अधिकारी होइगो । तातें पुष्टिमार्ग कौ अधिकार उनहीं कों है ।

तब वह ब्राह्मण सेठ पुरुषोत्तमदास के द्वार पर आइ सेठकों खबर कराई । तब मनुष्यन नें कही, एक ब्राह्मण

तुमसों मिलन आयो है। तब सेठनें कही जो- माथो खाली करन आयो होइगो।

भाव प्रकाश- याकौ अर्थ यह जो- महादेवजी को भक्त है, नाम सुनेगो, परन्तु दृढ भक्ति बहुत दिन लों पचैंगे तब होइगी।

पाछें सेठ सेवा तें पहोंचिकें बाहिर आए। तब वह ब्राह्मण नें दंडवत् कियो। तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही- तुम यह अनुचित क्यों करत हो? हम क्षत्रिय हैं, तुम ब्राह्मण होइके दंडवत् करत हो? तब उह ब्राह्मण नें कही, जो हमको नाम देहु, सेवक करो। तब सेठने कही हमतो काहू कों नाम देत नाहीं। सेवक नाहिं करत।

भाव प्रकाश- ताकौ अर्थ यह नाम देवे बारे सेवक करवेबारे तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु हैं। यह बात तो वह ब्राह्मण समुझयो नांहि।

तब बहोत आग्रह किए परन्तु सेठ ने नाम नांहि दियो। तब महादेवजी पास फिरि आयो। कह्यो- सेठतो नाम नांहि देत। तब विश्वेश्वर महादेव ने कह्यो, जो- तू फेरि जाइकें सेठजी सों कहियो जो मोकों महादेवजी ने पठायो है। जो अबकें नाहिं फेरेंगे। तब वह ब्राह्मण फेरि आइकें सेठजी सों कहीं जो- मोकों महादेवजी ने पठायो है सो नाम देउ।

भावप्रकाश- ताकौ यह अर्थ जो जीव पुष्टिमार्ग कौ है। तातें नाम देऊ।

तब सेठ ने उह ब्राह्मण कों नाम सुनाय हाथ जोरिकें जैश्रीकृष्ण कियो। तब वह ब्राह्मण ने कह्यो तुम मोकों नाम सुनाऐ, अब हाथ जोरिकें नमस्कार क्यों करत हो? तब सेठ ने कही हम श्रीआचार्यजी की आज्ञातें नाम देत हैं। हमारे तिहारे गुरु श्रीआचार्यजी महाप्रभु हैं। जब श्रीआचार्यजी महाप्रभु पधारें तब उनके पास फेरि नाम सुनियो। हमारे तिहारे भगवत् स्मरण कौ व्यौहार भयो। पाछें वह ब्राह्मण अडेल में जाइ श्रीआचार्यजी के पास नाम निवेदन पाए। तब वह कछूक दिन रहि दछिन देस गयो। वैष्णव भयो।

भावप्रकाश- यह वार्ता में यह संदेह है जो महादेवजी जन्माष्टमी कौ उत्सव देखन सेठ पास आए। सो श्रीआचार्यजी संबंधी लीला सो गोपालदास गाए हैं- 'यह मारग श्रीवल्लभ-चरनो- जहाँ नहि प्रवेस विधि हरनो'।

यहाँ यह भाव जाननो जो सेठ के घर सारस्वत कल्प को पूर्णावतार की लीला है। तहां सगरी लीला है। सो महादेवजी कों कल्पाँतर की लीला, सो अंसकला है, ताकौ अनुभव भयो। यह कहि यह जताए जो श्रीआचार्यजी के ठाकुर हैं तहां पुष्टिमार्गीय वैष्णव कों पूर्ण पुरुषोत्तम के स्वरूप को दरसन होइ। अन्यमार्गी कों एसे दरसन न होई।

महादेवजी उह ब्राह्मण सों कहे जो सेठके सेवक होउ। तब पुष्टिमार्ग में अंगीकार होइगो।

वार्ता प्रसंग ४— और सेठ पुरुषोत्तमदास एक दिन मंदिर में बैठे हे, मंदिर वस्त्र करत हते। सो दूरितें गोपालदास देखिकें मनमें बिचार कियो। जो— अब सेठजी वृद्ध भए हैं। तातें अब मैं सेवा में तत्पर होऊं। तब गोपालदास न्हाइ आए। तब सेठनें गोपालदास के मनकी जानि के बुलाए। बेटा आगे आउ। तब गोपालदास निकट आइकें देखे तो बीस पच्चीस बरस के सेठ हैं। तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने गोपालदास सों कही जो— भगवदीय सदा तरुन हैं। परन्तु जो अवस्था होइ ताकों मान दियो चाहिए तातें आजु पाछें एसी मनमें मति लाइयो।

भावप्रकाश— याको अर्थ यह जो - गोपालदास के मन में यह आई जो - मैं तरुन हों सेठजी वृद्ध हैं अब मैं सेवा में तत्पर होउं। या बात में गोपालदास को बिगार जान्यो जो तू, हम कहा सेवा करेंगे? श्रीआचार्यजी जासों कृपा करेंगे वासों ही श्री ठाकुर जी सेवा करावेंगे। सो तरुन कहा, वृद्ध कहा? आजु पाछें एसी मन में कबहू मति लाइयो। सो या प्रकार मानमर्दन करि बेगिही समुझाए। काहे तें गोपालदास लीला में सेठकी सखी हैं तातें ए न समुझावें तो और कौन समुझावें?

वार्ता प्रसंग ५- और एक समय सेठ दछिन में गए। तहां झारखंड में मंदार पर्वत है, ताके ऊपर मंदार मधुसूदन

ठाकुर हैं। सो उह पर्वत तें मनुष्य गिरै तो चोट न लगै अन-जानें। और जानि के सिगरे पाप कहि कें ऊपर तें गिरै तो देह छूटै। पाछे दूसरे जनम में कामना सिद्ध होय। ऐसो वा पर्वत कौ माहात्म्य लोक में प्रसिद्ध है।

तहां एक बेर श्रीआचार्यजी पृथ्वी परिक्रमा करत पधारे हे। तहां एक समय सेठ पुरुषोत्तमदास और एक ब्राह्मण वैष्णव विरक्त संग दोउ जने गए। सो उहां रात्रि व्है गई। तातें पर्वत पर सोइ रहे। अर्द्ध रात्र समय एक ब्राह्मण सिद्ध कौ रूप धरि श्रीठाकुरजी आपु आए। तब सेठ बोले नांही। उह वैष्णव सेठ के संग कौ पूछे, जो तुम कौन हो? तब उन कह्यो जो - मैं ब्राह्मण हों या पर्वत पर रहत हों। तुम कौन हो? तब वाने कही - हम श्रीवल्लभाचार्यजी के सेवक हैं। तब उन ब्राह्मण ने कही हमारे पास मणि है, तुम लेउगे? तब वैष्णव ने कही, मणि में कहा गुण है? तब उह ब्राह्मण ने कही जितनो द्रव्य चहिए सो मणि सों मिलै। तब उह विरक्त वैष्णव ने कही जो मैं कहा करूंगो? जगदीस सेर चून देइगो। तातें सेठ पुरुषोत्तमदास गृहस्थ हैं, इनको बहोत खरच हैं. इनको देउ। तब ब्राह्मण ने कही जो— सेठ-जी कों जगावो। तब उह वैष्णव नें जगाइ के सेठजी सों कही, यह मणि लेउ। यासो जितनो द्रव्य चहिए तितनो होइगो।

तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही, जो–हमारे तो मणि नांहि चहिए। तब उह सिद्ध ब्राह्मण मणि लेके फिरि गयो। तब वैष्णव ने सेठजी सों कह्यो,तुम मणि क्यों न लिए ? तब सेठ ने कही तू क्यों न लियो ? पहेलेतो तोकों देत हो। तब उह वैष्णव ने कही मैं विरक्त हों, मणि कहा करूंगो ? जगदीस सेर चून जहां तहां ते देइगें। तब सेठ ने कही तोकों सेर चून देइगें तो मोकों दस सेर हू देइगें। कहा जगदीस के कछु टोटो है ? सो ब्राह्मण बावरे ! मैं श्रीठाकुरजी को आश्रय छोड़ि मणि को आश्रय करूं ? पाछे सेठ अपने घर आए।

भावप्रकाश– यह वार्ता में बहोत संदेह हैं जो सेठ सेवा छोड़ि कें दक्षिण क्यों गए ? इनके कछु कामना तो नाँही सो दक्षिण में उहां मधुसूदन ठाकुर के दर्शन कों क्यों गए ? तहां कहत हैं, जो- सेठके मनमें यह आई जो दक्षिण में श्री आचार्यजी को जनम है। सो जनमस्थान के दर्शन करि आऊँ ताके लिए दक्षिण गए। तब मंदार मधुसूदन ठाकुर सेठजी सों कहे जो तुम कृपा करिकें या पर्वत में मेरे पास आओ तो या स्थल को पाप दूरि होय। काहेतें मेरे यहाँ अनेक पापी आवत हैं सो कोऊ पर्वततें महात्म्य सुनिकें गिरत हैं। सो उनके पाप बहोत भए हैं। तातें सिगरे तीर्थ गंगाजी आदि भगवदीय के आइवे को मार्ग देखत हैं*। तातें तुम या देस

---

* "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता"। तथाच "ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः" श्रीभागवत।

में आए हो तो पावन करो। और तुम आवोगे तो या तीरथ की महात्म्य बढ़ैगो। निहारो तो कछु बिगरे है नाहीं प्रभु के आश्रयतें। या प्रकार मंदार मधुसूदन कहे। तब सेठजी उह परवत पर गए। तब मणि लेइके लुभ्याए। परंतु सेठजी निष्काम हैं इनकों कछु डर नांहीं। तातें जो एसे निष्काम होई वामें तीर्थ कों पवित्र करिवे की सामर्थ होय। तिनकों बाधक न परें। और सकामीकों तीर्थ हू बाधक हैं। सो यातें जो उह स्थल के महात्म्य तें पर्वत तें गिरै तब मनोरथ के फल पावें। यह कहि जताए, जो- मनोरथ कामना कछू वस्तु की कामना भई तब पुष्टिमार्ग सों गिरै। और निश्चय मणि न लिए ताको अभिप्राय यह जताए, जो- बिना मांगे (हू) कछूफल मिले ताके लिए मे (भी) बाधक अन्य संबंध होई तो कामनातें तो निश्चय अन्याश्रय होय। तातें सेठ नें उह विरक्त वैष्णवसों कही जो- 'बावरे' ताको कारन यह जो मणि आदि कछू फल देन आवें, तासों बोलनो नांहीं, आपुहि चल्यो जाइ। या प्रकार सेठके दृढाश्रय हतो।

वार्ता प्रसंग- ६- और एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु कासी पधारे। सो सेठ पुरुषोत्तमदास के घर उतरे। तब सेठ पुरुषोत्तमदास के ठाकुर श्रीमदनमोहनजी कों पंचामृत स्नान कराइ आपु भोग धरि भोजन किए। तब दामोदरदास हरसानी नें श्रीआचार्यजी सों विनती करी, जो- महाराज! यह कहा? यहां पंचामृत ठाकुर कों न्हवाए? तब

श्रीआचार्यजी कहे जदपि यह हमारी आज्ञातें नाम देत है तऊ इतनी मर्यादा राखी चहिए।

भावप्रकाश- याको आशय यह जो- सेवक करें ताके सन्मुख सिष्य के पाप आवत हैं, सो गुरु सामर्थ्यवान होइ सो पाप कों जरावे। सो सेठ जदपि मेरी आज्ञातें नाम देत हैं, भगवदीय हैं तातें पाप कहा करें वाकों, परंतु तऊ मर्यादा सों सेव्य कों पंचामृत के न्हवापतें सेठ के पंचतत्व को सरीर सुद्ध होय एक यह गौणभाव। और उत्तम भाव यह जो- सेठ श्रीमदनमोहनजी की श्रीआचार्यजी महाप्रभु के भावसों सेवा करत है। तातें श्रीआचार्यजी पंचामृत स्नान कराई, श्रीगोवर्द्धनधर रूप करि भोग धरत हैं। यह भाव जाननो।

वार्ता प्रसंग- ७- बहुरि एक दिन कासी के राजा के मनमें आई जो सेठ पुरुषोत्तमदाससों हम मिलिए। सो राजा गंगा पार रहत हतो। तहांते प्रातःकाल आयो। ता समय सेठजी छोटी परदनी पहरें गोबर संकेलत हते। तब सेठके लोग नें सेठसों कह्यो, जो- तुमसों मिलन कों राजा आवत हैं। सो आछे वस्त्र पहिरिकें गादी पर बैठो। तब सेठ कहे जो आवन दे। राजा कौ कहा डर है ? तब राजा आयो। तब सेठ गोबर भरे हाथ राजा के आगे आए। तब राजा चतुर हतो सो कहे सेठजी। तुम धन्य हो। या संसार में मान बडाई एक तिहारी छूटी है। तब सेठ नें कही हम गृहस्थ हैं, घर कौ काम कर्यो चहिए। तब राजा प्रसन्न होइ

के घर गयो । या प्रकार सेठकों प्रतिष्ठा की चाह रंचक हू नांहीं । और गाय की टहल, सो अपने घर कौ काम कहे ।

भावप्रकाश– ताको आसय यह जो जैसे श्रीठाकुरजी की सेवा जेसें गाय की सेवा । यही घर कौ काम है । लौकिक वैदिक काम है सो बाहिर कौ काम हैं । या भांति तें सेठि ने कही ।

वार्ता प्रसंग- ८- सो एसे सेवा करत जन्माष्टमी आई । तब श्रीआचार्यजी ने नंदरायजी के घर जन्म उत्सव भयो ता लीला के भावतें पालना नन्द महोत्सव किए । तब नंदरायजी, यशोदाजी, गोपी ग्वालसों रह्यो न गयो । सो साचात् पधारे । नंदमहोत्सव अनिर्वचनीय भयो । सो दर्शन सेठ पुरुषोत्तमदास कों, रुकमिणी कों, गोपालदास कों भए ।

भावप्रकाश- काहेतें ये लीला संबन्धी पात्र हैं । पाछें श्रीआचार्यजी ने जसोदाजी गोपीग्वालसों कहे जो– या काल में तुम साचात् पधारे सो उचित नांही । तब सबनने कह्यो, जहां तुम साचात् स्वामिनी रूप व्है उत्सव करो तहां हमसों क्यों रह्यो जाइ ? तब श्रीआचार्यजी नें कही जो (अबसों) हम सब तिहारे भेष धरावेंगे । तिनके भीतर व्है पधारियो । तब कहे जो आछो भेष सों पधारेंगे । ता दिनतें श्रीआचार्यजी नें भेष की रीति जन्माष्टमी पे किए । या प्रकार प्रथम ही जन्म उत्सव सेठ पुरुषोत्तमदास के घर कियों । ता पाछें

सेठ जह पुरुषोत्तमदास नित्य श्रीमदनमोकों पालनें झुलावत। जन्म उत्सव के भावमें सदा मगन रहते।

वार्ता प्रसंग- ६- और श्रीआचार्यजी के पास वादी बहोत आवें। सो वाद करत संझा व्है जाय। सो आपु के भोजन बिना किए वैष्णव महाप्रसाद लेइ नाही तब श्रीआचार्यजी पत्रावलंबन ग्रन्थ कारके एक कागद पर लिखि एक वैष्णव कों दिए। जो- विश्वेश्वर महादेवजी के देवालय में लगाइ भीति सों, यह कहियो- जितने पंडित शैव, ब्राह्मण वादी आवें सो संदेह होइ, सो यामें देखि लेउ। जो उत्तर न पावो तो श्रीआचार्यजी पास आइयो। तब वैष्णव 'पत्रावलंबन' ग्रन्थ ले जाइ महादेव के पास भींति में लगाइ, सिगरे माया वादी तो तहां आवें ही, तिनसों वैष्णव ने कही, जो संदेह श्री-आचार्यजी सों पूछनो होइ सो याकों बांचि लेउ। सो सबन को उत्तर मिल्यो। सब चुप व्है रहे। और कहे जो श्रीआचार्यजी ईश्वर हैं इतने छोटे ग्रन्थ में हजारन मायावादीन को निरुत्तर किए।

भावप्रकाश- महदेवजी के पास लगाइवे को आसय यह है जो हमारो कियो तिहारे इष्ट महादेव कों प्रमाण है। तो तुमको जीतने कितनीक बात हैं। और इतने पर या काशी के राजा विश्वेश्वर हैं। उनके पास यह झगरो डारे हैं। खोटे खरे के महादेव साक्षी हैं। अब जो न मानोगे तो तुम को महादेव दंड देइगे। या प्रकार

महादेव स्तों कहवाइ* सिगरे पंडितन कों जीते। जैसे पुष्टिमार्गीयन कों इष्ट व्रजभूमि और श्रीकृष्ण तैसे सैवको इष्ट कासी महादेव! सो कासी में महात्म्य दृढ़ जताए बिना जगत में भक्तिमार्ग कौ विस्तार न होय वैष्णव जन को पाछे ते सैव द्वेष करि दुख देइ। तातें श्रीआचार्यजी कासी में या प्रकार कौ महात्म्य पत्रावलंबन द्वारा जताए सबकों। यातें जो कोई पंडित वादी काहू वैष्णवसों बोलि न सके।

वार्ता प्रसंग- १०- और एक सेठ के सगे संबंधी में मामा लगत हो। सो सेठजी सों कहे नित्य, जो गया को चलौ तो मैं तिहारे संग चलों। तब सेठ कहे, अवकास पाइ के चलेंगे। सो चैत महिना आयो। तब उह मामा ने बहोत बहोत आग्रह कियो जो गया चलो। तब सेठ ने दोइ गाड़ी की तैयारी कराई। एक गाडी पर मामा को बैठाइ आगें चलाए एक गाडी पर राजभोग पाछे सेठ चले। सो कोस पांच छह गए। तब एक बेंगन को खेत, (आयो) तामें ते खेतवारे नें सुंदर बेंगन चीनि कें बडो टोकरा भरि कें धर्यो, सो सेठ की दृष्टि परी। तब सेठ जी ने गाडी ठाड़ी कराई। यह बिचारे जो- श्रीमदनमोहनजी के सैनभोग लायक साग होइगो। तब वासों कहे जो यह बेंगन को कहा लेइगो? तब उह कह्यो एक रुपैया लगेगो। तब सेठ ने रुपया दे बेंगन सब गाडि

---

* सत्यं सत्यंच सत्यं च सत्यं श्रीवल्लभोब्रवीत्।'

म धरि गाडीवान सों कहे, बेगे गाडी पाछे कों घर कों हांकि तोकों एक रूपैया देउंगो। इहां श्रीमदनमोहनजी रुकमनी सों कहें, बेग तू उठि के न्हाइ के पूरी कर, सेठ साक लेकें आवत हें। तब रुक्मिनी ने कही, महाराज! सेठ तो गया को गए हैं। तब श्रीठाकुरजी ने कही, सेठ गया करि आयो, उनकी गया पूरण भई। तू उठि के पूरी बेगे करि, तब रुक्मिनी न्हाइ के, मेदा घर में सिद्ध हतो, सो पूरी करन लागी। पहर एक रात्रि गई हती। कछूक पूरी बाकी रही तब सेठ घर पर आई पुकारे। तब गोपालदास ने किवाड़ खोलि दिए। तब सेठ रुक्मिनि सों पूछे कहा समय है? तब रुकमनि ने कही पुरी करी है, साक नाहीं है। तब सेठजी ने कही में साक लायो हों। तब रुकिमिनी ने कही बेगे सँवारि देउ थोरी सी पूरी रही है। तब सेठजी और गोपालदास मिलिकें बेंगन सँवारि दिए। रुक्मिनी ने सामग्री सिद्ध करी। सेठहू न्हाइकें भोग धर तब सेठ गोपालदास सों कहे, दस पांच वैष्णव बेगे मिले सो लिवाइ लाउ। तब गोपालदास वैष्णवन को बुलाइ लाए। इतनें समय भयो भोग सराए। सेन आरती करि श्रीठाकुरजी कों पोढ़ाए। अनौसर कराइ वैष्णवन सों मिलिके महाप्रसाद लिए। पाछें उह मामा कछूक दिन में गया करि आयो। तब कह्यो तुम पाछेते क्यों फिरि आए। तब सेठने कही, मोकों कहा पूछत हों, मेरे घर में कछु काम हतो। तातें फिरि आयो।

भावप्रकाश— या वार्ता में यह सिद्धांत भयो जो सामग्री उत्तम देखिए तामें अपने प्रभु कौ स्मरण करिए। वाको बहोत मोल में (खरीदिये) झगरो न करिए। अपने सामर्थ प्रमान लीजिए। और भगवत सेवा रूप यह धर्म के आगें सिगरे वैदिक धर्म तुच्छ जानिए। तब श्रीठाकुरजी प्रसन्न होंइ। सेठकी प्रीति अर्थ दूसरे फिरि सैन भोग श्रीठाकुर जी अरोगे। तातें स्नेह है सोई प्रभु प्रसन्नता कौ कारन है।

सो वे सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के एसे कृपापात्र भगवदीय हे। तातें इनकी वार्ता कौ पार नांही सो कहां तांई लिखिए। वैष्णव ६ (८४ मध्ये)
(६६ मध्ये वैष्णव संख्या १२)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तमदास की बेटी रुकमिनी तिनकी वार्ता और ताकौ भाव कहत हैं—

भाव प्रकाश— ए रुक्मिनी लीला में श्रीस्वामिनीजी की सखी है इंदुलेखा, तिनकी सखी 'मोदिनी' है। श्री ठाकुरजी की सेबा में तत्पर है। मोदिनी जो आनन्द ताकी उपजावनहारी है तातें इनको नाम मोदिनी हैं।

वार्ता प्रसंग- १- सो एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की सरन रुक्मिनी आई। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने वाकौ नाम सुनायो। ता पाछें निवेदन करवायो सो उह रुकिमिनी बड़ी कृपापात्र हती।

सो एक समय श्रीगुसांइजी काशी पधारे हे। सो तहां सूर्य ग्रहण भयो। तब श्रीगुसांईजी मणिकर्णिका घाट स्नान कों पधारे। तब रुक्मिनी (ह्) श्रीमदनमोहनजी कों स्नान कराइ कें आपु मणिकर्णिका स्नान कों आई, सो श्रीगुसांइजी पधारे जानिके। सो स्नान करिकें वस्त्र पहिरे। तब एक वैष्णव ने श्रीगुसांइजी सों कह्यो महाराज। सेठ पुरुषोत्तम-दास की बेटी गंगास्नान कों आई है। तब श्रीगुसांईजी कहे, रुक्मिनी, आगे आऊ। तब रुक्मिनी आगे आई। तब श्रीगुसांईजी पूछे तू कितने दिनन में गंगास्नान कों आई है? तब रुक्मिनी ने कही, महाराज! चौबीस बरस पाछें गंगा स्नान कों आई हों। यह रुक्मिनी के वचन सुनिके श्रीगुसांईजी को हृदय भरि आयो। जो एसी सेवा में मगन है! जो गंगास्नान कौ अवकास नाहि है।

भाव प्रकाश— तहां यह संदेह होई, जो चौबीस बरस पहिलें तो गंगाजी स्नान कों आई हती। अब श्री गुसाँइजी पधारे तातें आई परन्तु गंगास्नान या आग्रह तें रुक्मिनी सेवक भए पाछें आई नहीं। ऐसी सेवा में मगन है।

सो श्रीगुसांईजी रुक्मिनी कों देखि के कहते, जो-इनसों श्रीठाकुरजी उरिन कबहूं न होइगें।

भाव प्रकाश— ताको अर्थ यह जेसे रास पंचाध्याई में श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन सों कहे, जो- तिहारो भजन एसो

है जो मैं सदा रिनि रहूँगो। तैसे रुक्मिनी सों श्रीठाकुरजी रहेंगे। या भाव सों श्री गुसाँईजी ने कही।

वार्ता प्रसंग- २- और क्षत्रिय लोगन में बहुबेटी कासी में कार्तिक, माह, वैसाख गंगास्नान करतीं। सो रुक्मिनी नें सेठ पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो तुम कहो तो मैं कार्तिक स्नान करूँ। तब सेठने कही करो, जो चाहिए सो लेऊ। तब रुक्मिनी ने कहि घृत खांड मंगाइ देहु, मेदा तो घर में हैं। तब सेठ ने घी खांड मंगाइ दियो। सो रुक्मिनी पहर रात्रि पिछली सों उठि नित्य नेगतें अधिक सामग्री करै। सो मंगलातें राजभोग पर्यन्त अरोगावे। पाछें उत्थापन के पहर एक पहलें न्हाइ सामग्री करै। सो उत्थापन तें सयन पर्यंत अरोगावे। एसे करत कितने के दिन बीते। तब सेठनें रुक्मिनी सों पूछ्यो जो- कार्तिक न्हाते तो तोकों कबहू देख्यो नांहि, तू गंगाजी कौन समय न्हाति है? तब रुक्मिनी कही मेरे कार्तिक न्हाइवे को कहा काम है? जाकों कछू कामना होइ सो कार्तिक न्हाइ। मैं तो याही भांति न्हात हों। तब सेठ पुरुषोत्तमदास बहुत प्रसन्न भए।

भावप्रकाश— तहाँ यह संदेह होइ जो रुक्मिनी ने कार्तिक न्हाइवे को नाम लेके सेठ पास सामग्री क्यों लीनी अरोगाइवे को नाम लेती तो कहा सेठ सामग्री न देते? तहां कहत हैं, जो जैसे कुमारिकान को मन श्रीठाकुरजी

सों लाग्यो तब न्यारे मनोरथ (कियो) (सो) जसोदाजी सों कह्यो चहिए। तब जसोदा जी सों कहे, जो तुम कहो तो हम कात्यायनी देवी को पूजन करें, मार्गसिर महिना श्री जमुना जी स्नान। तब श्री जसोदाजी ने श्रीनंदरायजी सों कहि न्यारी सामग्री पूजन की घी खाँड सब कुमारिकान कों दिये। तब कात्यायनी देवी कौ मिस करी श्रीयमुनाजी को पूजन कियो काहेतें, श्री ठाकुरजी श्री यमुनाजी एक ही हैं। तातें "पुरुषोत्तमसहस्रनाम" में श्री आचार्यजी कहे हैं "कात्यानी व्रत व्याज सर्वभावाश्रिताङ्गमः"। कात्यायनी व्रत को व्याज जो मिस करि सर्व प्रकार को भाव सगरे अंग मे आवेश करि प्रभु को आश्रय कियो तैसे ही रुक्मिनी ने हू कार्तिक, मार्गसिर, माह, वैसाख इत्यादिक को नाम ले व्रज भक्तन के भाव पूर्वक सेवा करी यामें यह जताए जैसे व्रज भक्तन के भाव को खबरि काहुकों न परी तैसे रुक्मिनी के भाव का खबरि काहुकों न परी। और को कहा ? सेठ पुरुषोत्तम-दास हू रुक्मिनी के हृदय के भाव कों पहोंचि न सकते ऐसो अगाध हृदय हतो।

वार्ता प्रसंग- ३- बहुरि एक समय रुक्मिनी की देह असक्त भई। तब रुक्मिनी ने कह्यो, अब देह छूटे तो आछो। जा देह तें भगवान की सेवा न भई सो देह कौन काम की ? पाछें भगवत् इच्छा तें देह छूटी तब काहु वैष्णव ने श्री गुसांइ जी सों कही महाराज रुक्मिनी ने गंगा पाई। तब श्रीगुसांईं जी कहे जों एसे मति कहो। एसे कहो जो गंगाजी ने रुक्मिनी पाई।

भावप्रकाश— काहेतें जो गंगाजी किनारे तो अनेक जीव देह छोड़त हैं। परन्तु गंगाजी को एसी भगवदीय कहाँ मिले? या प्रकार श्रीमुखते कहें। ताको कारन यह जो-भगवदीय गंगाजी आदि तीरथ को पवित्र करत हैं। तामें नन्ददास जी नें (हू) पंचाध्याई में गायो है- "गंगादिकन पवित्र करन अवनि पर डोलें"। भगवदीय कौ प्रागट्य जीवन के उद्धारार्थ ही है। जैसे भगवान् को प्रागट्य तेसे ही भगवदीय को प्रागट्य हैं सो 'पुष्टि प्रवाह मर्यादा' ग्रंथ में श्री आचार्यजी भगवदीय को स्वरूप लिखे हैं।

"तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः।
भगवद्रूप सेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत॥ १२॥
स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रिया सु वा॥ १३॥

पुष्टि मार्गीय जीव यह संसार के जीवन ते भिन्न हैं या में संशय नाहीं। भगवान को रूप ही है। भगवान की सेवा ही के अर्थ जगत में पुष्टि धर्म प्रगट करिवे के लिए जन्मे हैं। भगवान के सरूप में, भगवान के अवतार में,। भगवान के जेसे गुन हैं, भगवान की जैसी क्रिया हैं, तेसे ही भगवदीय में लछन है। तातें भगवान में अरु भगवदीय में तारतम्य नाही हैं। या प्रकार श्री गुसांईजी भगवदीय के गुन सब रुक्मिनी में कहे।

सो यह रुक्मिनी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की सेवक एसी कृपापात्र भगवदीयही। तातें इनकी वार्ता को पार नाही सो कहां ताई लिखिए। (८६ मध्ये वैष्णव)

अब श्रीआचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तम दास के बेटा गोपालदास।तिनकी वार्ता।

भाव प्रकाश— सेठ पुरुषोत्तमदास लीला में इन्दुलेखा श्रीस्वामिनीजी की सखी हैं। ताकी सखी 'गायनकला' सो ये हैं। व्रजभक्तन को विरह संयुक्त गायन तिनकी कला गोपालदास में झलकत है। यह कहि यह जनाए जो गोपालदास विरह में सदा मगन रहते।

वार्ता प्रसंग- १- सो गोपालदास सों श्रीमदनमोहन जी सानुभाव हते, सो जो चहिए सो मांगि लेते। ऐसे सदैव कृपा करते।और गोपालदास कीर्तन बहुत करते। सो एक समय होरी के दिनन में गोपालदास कों बहोत विरह भयो। होरी के भाव संयोग रस की विस्मृति है गई। तब नित्य जैसें व्रजभक्त वेनुगीत जुगलगीत गावत हैं ता भावसों दोइ कीर्तन 'ललना' कहिकें गाए।

भावप्रकाश— सो ललना को अर्थ यह जो व्रजकी ललना या प्रकार विरह में गान करत हैं।

सो ललना गावत ही श्रीठाकुरजी लीला सहित दर्शन दिए। तब गोपालदास बलिहारी लिये। तातें गाए, जो "मदनमोहन के वारनें बलि बलि दासगोपाल।

वार्ता प्रसंग- २- सो कितनेक दिन पाछे गोपालदास की देह बहोत असक्त भई। तब भगवत् नाम कौ उच्चार करते। तब श्रीमदनमोहन जी आप हुंकारी देते एसी कृपा करते। एसे करत रात्रि कों गोपालदास कौं नींद आवती फेरि चौंकि कें विरह में पुकारते। श्रीमदनमोहनजी। तब मंदिर सों श्रीठाकुरजी कहते क्यों पुकारत हो? मैंतो तेरे निकट हों। तब गोपालदास कहते, महाराज! आपु क्यों जागत हो? मेरो तो पुकारिवें को सुभाव परयों हैं। तब मदनमोहनजी कहते मोसों तेरो विरह सह्यो नांहि जात। तातें तेरो समाधान करत हुं। या प्रकार गोपालदास मंदिर कौ अरु चोक कौ ताला लगाइ चोखटि पर माथो धरि के, एक वस्त्र बिछाइ विरह में परे रेहतें। सरीर के सुख की खबरि ही नाहि रहति। तातें विरह के कीर्तन बहुत गाए हैं।

और श्री आचार्यजी के ग्रन्थ सुबोधिनी निबंध श्री गुसांई जी के रहस्य ग्रन्थ सो सब गोपालदास अनोसर में देख्यो करते। समय पर भगवत् सेवा करते। व्यौपार बनिज लौकिक वैदिक सर्व त्याग करि लीलारसमें मगन रहतें। सो श्रीगुसांईजी गोपालदास ऊपर बहोत प्रसन्न रहते। कहतें जो सेठ पुरुषोत्तमदास को परिवार एसो ही चाहिये। विरह की दसा अनिर्वचनीय है। तातें गोपालदास की वार्ता

कौ विस्तार नाहि किए । सेठ पुरुषोत्तमदास के परिवार सहित वार्ता एक । (या प्रकार वैष्णव ग्यारह भए परन्तु परिवार सहित वार्ता एक गिनवे तें ८४ मध्ये वैष्णव छ और ६६ मध्ये वैष्णव १४ भए)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक रामदासजी सारस्वत ब्राह्मण पूरब में रहते तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं ।

भाव प्रकाश— सो ए रामदासजी लीला में राधा सहचरी की सखी है । 'प्रेम मंजरी' इनकौ नाम है । ए कुमारीका के जूथ में है ।

सो रामदास के पिता के पास द्रव्य बहोत हतो । परन्तु पुत्र नाँहि हतो । सो सूर्य की उपासना बहोत करी । तब सूर्य प्रसन्न होइ के एक पुत्र दियो । सो रामदास जी बरस आठ के भये तब पिता ने विवाह रामदास को कियो । पाछें देह छोड़ी । सो रामदास को एक मर्यादा-मार्गीय वैष्णव को सतसंग भयो । तब मर्यादा मार्गीय वैष्णव ने कही, कोई तीरथ करे हो ? तब रामदास जी कहे पिता की देह छूटी, अब घर छोडि के कैसे जाँइ ? तब वा मर्यादा-मार्गीय वैष्णव ने कही, भलो ! गंगासागर तो तिहारो निकट है । यहां तो न्हाइ आवो, चलो मैं संग चलूं । तब रामदास संग चले । तब रामदासजी उह मर्यादामार्गीय के संग गंगासागर जाइ न्हाए । तीन दिन तहां रहे । चौथे दिन तहाँ रहे न्हाइ के, गंगा सागर के किनारे रसोई करन के लिए थोरी सी रेती डारे । तब लालजी को स्वरूप उहाँ तें निकस्यो सो रामदास जी गंगासागर के जल सों न्हवाइ उह मर्यादा-मार्गीय वैष्णव सों कहयो । मोको भगवत्स्वरूप प्राप्ति भयो ।

तब वह मर्यादा मार्गीय वैष्णव ने कही, तिहारे बड़े भाग्य हैं। तुम इनकी पूजा करियो, परंतु तुम सेवक काहू के हो! तब रामदासजी बरस सोरह के हते। सो कहे, मैं सेवक तो अबही नाहीं भयो। तब मर्यादामार्गीय वैष्णव ने कह्यो, मैं तुमको सेवक करों जो तिहारो मन होय। तब रामदास जी कहै घर जाइ के स्त्री सहित सेवक होउंगो। तब उह मर्यादामार्गीय वैष्णव ने कह्यो, जो- श्रीवल्लभाचार्यजी, सो (जिनने) दक्षिण में कासी में मायावाद खंडन किये है सो पुरुषोत्तम पुरी में पधारे हैं। उनकी सरन तोकों मिले तो तेरे बड़े भाग्य है। तब यह सुनतही रामदासजी श्रीठाकुरजी कों लेके घर कों वेगे चले। उह मर्यादामार्गीय तो गंगासागर ऊपर रह्यो। सो चौथी मजलि करि अपने गाम के बाहर एक बगीचा है तहां रामदास मध्याह्न समें आये। सो श्रीआचार्यजी हू पुरुषोत्तम पुरी सों एक दिन पहले के आइ उतरे हते। तब श्री आचार्यजी रामदास सों कहें, तुमकों गंगासागर में भगवत् सरूप कैसो प्राप्त भयो है! सो हमकों दिखाउ। तेरो नाम रामदास है। तब रामदास चकृत होइ रहे। जोमैं अबही चल्यो आवत हों, काहू कों भगवत् सरूप दिखायो नाहीं। तातें ये महापुरुष है। तब पास वैष्णव हे, तिनसों पूछे ये महापुरुष को नाम कहा है? तब कृष्णदास मेघन ने कही श्री वल्लभाचार्यजी सिगरें प्रसिद्ध हैं। मायावाद खंडन करि भक्तिमार्ग की स्थापन किए हैं। तब रामदास साष्टांग दन्डवत करि बिनती किये, महाराज! मेरे घर पधारिये। तब श्रीआचार्यजी कहे, तुम सारस्वत ब्राह्मण हो; तिहारे क्षत्री सों खानपान को ब्यौहार कैसे छूटेगो? तब रामदासजी कहे, आपु की कृपा तें मेरे द्रव्य बहोत है। मैं तो काहू सों जल को ब्यौहार हू न राखोंगो। आपु आज्ञा करोगे तैसें करूंगो। तब श्री

आचार्य जी प्रसन्न होइ के रामदास के घर पधारे तब स्त्री सहित रामदास को नाम समर्पन कराए। श्रीठाकुरजी को पंचामृत सों स्नान कराई पाट बैठारें। श्रीठाकुरजी कौ नाम श्रीनवनीयप्रियजी धरें। पांच रात्रि रामदास के घर रहि के सगरी रीति सेवा की बताए, आपु पृथ्वी परिक्रमा को पधारें।

वार्ता प्रसंग १ — सो रामदासजी अष्ट प्रहर अपरस में रहते। जलपान बीड़ा अपरस में लेते।

भाव प्रकाश— यह कहि यह जताए जो - लौकिक काहू सों बोलते नांही। व्यौहार बनिज कछू न करते, स्त्री संग हू छोड़े।

या प्रकार भगवत् सेवा करते। श्रीठाकुरजी कौ नेगहू बहोत हतो। द्रव्य हू बहोत हतो। सो कछुक दिन में द्रव्य थोरो सो आइ रह्यो।

भाव प्रकाश— ताकौ अभिप्राय यह, जो - रंच द्रव्य कौ अहंकार हतो। सो अन्याश्रय श्रीठाकुरजी कों छुडाय दैन्य करनो है। तातें द्रव्य थोरो सो रह्यो।

तब रामदास ने बिचार्यो, जो - कछू द्रव्य कौ उपाइ कर्यो चहिए। तब पूरव देस में पटबस्त्र बुनावत हैं तिन- कों तांती कहत हैं। सो तांतीन कों ब्याज द्रव्य दियो तो ब्याज बहोत आवन लाग्यो। तब रामदासजी के मन में

कछुक हरख भयो । ताते श्रीठाकुरजी आज्ञा किए , जो - तू मोकों तांतीन ऊपर राख्यो ?

भाव प्रकाश— ताकौ आसय यह , जो - मैं भाव प्रीति सों रहत-हों सो पहले द्रव्य पर राख्यो , जो द्रव्य घटयो तब ब्याज पर राख्यो , जो तांती सों ब्याज आवै । तामें मेरी सेवा ब्याज को द्रव्य महा हीन, द्रव्य को मैलि सो नासँ करे सो ता पर मैं कैसें रहूंगो ।

तब यह आज्ञा सुनि के रामदास चौंकि परे ।

भाव प्रकाश— सो यह जो - हाय हाय । मैं बुरो काम कियो । अब भगवत् इच्छा होइगी सो सही , परन्तु एसो कार्य कबं हूं न करनो ।

तब तांतीन पास गए। कहे मेरो सगरो द्रव्य देहु । तब तांतीन ने कही तुम कों ब्याज दिए जात हैं तो द्रव्य कहा देऐ ? कहा थोरे दिनन में (ही) मांगन लागे ? तब रामदास जी कहें मोकों लरिका साथ काम परयो है, लरिका कहे सो करनो ।

भाव प्रकाश— यह कहि यह जताए , जो - बालक कौ ख्याल बिरुद्ध है । कोई खिलोनां कों ऊंचे बैठारे , काहू कों नीचे बैठारे । काहू को फोरि डारे । सोई प्रभु कौ सुभाव कर्तुं , अकर्तुं , अन्यथा कर्तुम् सर्व सामर्थ्य , जो मन में आवे सो करें । यह सिद्धांत कहे । परन्तु तांती जाने कोई बालक होइगो ।

सो सिगरो द्रव्य भेलो करिके रामदास जी कों दिए। सो घर लाए। सेवा करन लागे। सो कछुक दिन में सिगरो द्रव्य उठि गयो।

भाव प्रकाश— तब द्रव्य को आश्रय तो छूटयो। परन्तु पहले को गर्व ताको बीज है सो श्रीठाकुरजी अब दूरि करेंगे।

तब रामदास जी एक बनिया के इहां उधारे उचापति करन लागे। तब माथे रिन भयो। बनिया इनकों टोके। तब वा बनिया की उचापति छोडि और बनिया के इहां उचापति करन लागे।

तब एक दिन उह बनिया ने बहोत तगादो करयो। और कह्यो जो अब मेरे इहां उचापति नांहि करत तो मेरो दाम चुकाई देहु। तब वाकों बहोत कहि सुनि के विदा किए। परन्तु लज्जा के मारें बहोत दुःख भयो।

भाव प्रकास— तामें पिछलो अहंकार दोष दूरि भयो।

तब श्रीठाकुरजी रामदास कौ रूप करि उह बनियां कौ करज सब चुकाइ दिए। रूपैया १००) अधिक दै अपने हस्त सों रामदास के जमा लिखि आए। रामदासजी कौ दुख सह्यो न गयो।

भाव प्रकाश— जो मेरे लिए इन इतनो दुख पायो है

यातें श्रीठाकुरजो करज चुकाए। परन्तु सौ रूपया अधिक धरे ताको कारन यह जो अधिक धरे तें कदाचित द्रव्य संबंन्धि प्रसन्नता गर्व होइ तो पुष्टिमारगीय फल न होय दास भाव जात रहै। श्री ठाकुरजी करज चुकाए। रामदास बैठे रहे। तातें थोरो सो रूपैया १००) धरें। यह परीक्षा अर्थं। और कछू दूसरे बनिया को करज हू भयो है। कछू खरच के लिए।

पाछें एक दिन रामदास का वैष्णव बुलावन कों आए। तिनके संग रामदासजी चलें। सो उह बनियां की हाट आगें होइकें निकसे। सो उह बनियां की नजर बचाइ आनाकानी देई के निकसे जो यह मांगेंगो। सो बनियां ने रामदास जी कों देखें। और बिचारयो जो- ये नजर बचाइ कें यातें आगें निकसे , जो - मैं इनसों तगादो बहोत कियो है। तब बनियां रामदासजी के आगे आइ पांवन पर्यो। कह्यो मेरे अभागि जो तुम उचापति अपनी हाट सों नांहि करत। परन्तु सौ रूपया अधिक धरें हैं सो तो लेआउ। तब रामदासजी ने कह्यौ मैं पाछें आऊंगो। अब काम जात हों। तब बनियां हाट पर आयो। रामदासजी नें अपने मन में बिचार कियो जो - मैं तो याकों कछू द्रव्य दियो नांहि। तातें मति कहुं श्रीठाकुरजी याकों दिए होंइ।

सो वैष्णव के इहां जाइ कछू लुवा छाई कौ काम हतो सो बताइ पाछे रामदासजी उह बनियां के हाट पर आइ

कहैं, अपनो लेखो निकार। तब बनियां ने कही, तुम लेखो चुकाइ रुपैया १००) अधिक धरि अपनें हाथ सों लिखि गए हो, फेरि देखि लेहु। सो बही में श्रीठाकुरजी के हस्ताक्षर देखे, तब चुप करि रहै।

तब घर में आइ बिचारे जो - अब घर में रहनो नांही। चाकरी करूंगो।

भावप्रकाश— ताकौ कारण यह जो घरमें रहों तो श्रीठाकुरजी कों श्रम होय द्रव्य खानो परें; स्त्री की प्रीति साधारण है। तातें यह खायगी।

तब ऐक घोरा लिए। हथियार बांधि चाकरी करन प्रागमें आए। तब जलपान बीड़ा बिना अपरसमें लेन लागे।

भावप्रकाश— ताकौ कारण यह जो कछू अपरस कौ अहंकार हतो, जो और सों एसी अपरस नांहि बनत सोउ श्रीठाकुरजी छुडाई अहंकार मिटाए। और यह जताए जो एसी अपरस कौन कामकी जामें श्रीठाकुरजी कों श्रम करनो परै।

पाछें एक दिन रामदासजी प्रागमें अडेलमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु के दरसन करन आए। सो पांचों कपरा पहरि हथियार बांधि दंडवत् किए। तब श्रीआचार्यजी रामदास सों देखिकें कहे, धन्य है। रामदास तू धन्य है। तब वैष्णव पास बैठे हैं सो कहन लागें, महाराज! अब याकों धन्य क्यों

कहत हो ? याकी अपरस तो छूटी, सिपाहीन में रहत है, हथियार बांधत हैं ? तब श्रीआचार्यजी कहे, यह धन्य है। श्रीठाकुरजी कों श्रम नांहि करावत है। तातें या समान धीरज काहूकौ नांही, यह श्रीमुखतें कहे।

भावप्रकाश— ताकौ कारण यह जो- कहा बहोत अपरस सों कार्य होत है ? पुष्टिमार्गीय धर्म बहोत कठिन है। द्रव्य सिगरो गयो, रिन मांथे भयो, परन्तु धीरज नाँही छूट्यो। सो कहा जो मन श्रीठाकुरजी में रह्यो। हृदय के भीतर चिंता रूप कष्ट नांही भयो। पाछें श्रीठाकुरजी रिन चुकाए। सो मनमें प्रसन्न न भयो। चाकरी को कार्य कियो। अब दैन्यता याकों भई है, मन श्रीठाकुरजी में है। या आसयतें श्रीआचार्यजी धन्य कहे।

वार्ता प्रसंग- २- और श्रीआचार्यजी के द्वार आगे एक खाड़ा हतो। सो आपु न्हाइवे कों पधारें, तब कहें यह खाड़ा अजहूं भरयो नांही है। यह कहिकें आपुतो श्रीयमुनाजी स्नान कों पधारे, सिगरे वैष्णव खाड़ा भरन लागे। तब रामदासजी एक बड़ो टोकरा ले जहां तांई श्रीआचार्यजी न्हाइ के पधारें तहां तांई में खाड़ा पूरि बराबर धरती करि दिए। तब श्रीआचार्यजी आपु रामदास कों देखे खाड़ा भरते, सिगरे कपड़ा धूरि सों भरे देखिके, फेरि श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइ के कहे, रामदास धन्य है।

भाव प्रकाश— सो यातें जो और वैष्णव आछे कपरा उतारी एक धोती पहरि खाड़ा भरें। रामदास श्री-आचार्य जी की आज्ञा सुनि के परम भाग्य सेवा मानी खाड़ा भरयो सिपाइपनेकी लाज सरम सब छोड़ी। ता पर श्री-आचार्यजी बहोत प्रसन्न भए। जो-या प्रकार भगवत् सेवा में प्रतिष्ठा मन में न आवे, छोटी मोटी हीन सेवा भाग मानि के करनो। यह सिद्धान्त जताए।

फेरि रामदास जी बरस एक में द्रव्य बहोत कमाइ घर आए। पाछे भली भांति सों सेवा करन लागें।

भाव प्रकाश—सो श्रीठाकुरजी कों धीरज देखनो हतो। पाछें द्रव्य की कहा है। जो चाहिए सो सब सिद्ध है।

वार्ता प्रसंग ३—पाछे एक दिन स्त्री ने कही तुम दूसरो ब्याह करो तो संतति होइ।

भाव प्रकाश—ताकौ कारण यह जो-स्त्री कों रामदास के हृदय के अभिप्राय की खबरि नाहीं। तातें जान्यो जो-मोसों राजी नहीं हैं, तो दूसरो ब्याह करो। ब्याह करें एक पुत्र होइ।

तब रामदास नें कही जो मोकों पुत्र की इच्छा नहीं है। तब स्त्री ने कही-मेरे एक पुत्र की इच्छा है। तब रामदास ने कही, जो तिहारे इच्छा है तो श्रीनवनीतप्रियजी की सेवा

बालभाव सों कर। जैसे खानपान सों लड़ावत हैं। तिहारो मनोरथ पूरन होइगो। पाछे कछुक दिनन में पुत्र भयो।

भाव प्रकाश—सो रामदासजी ने तो भाव रूप अलौकिक बात कही, जो श्रीठाकुरजी कों बालभाव सों लड़ावोगी तो पई बालक तिहारे होइगें। जसोदाजी के सौभाग्य कों पावेगी। सो तो स्त्री उत्तम अधिकारी होइ तो समुझे। तातें पुत्र की कामना सहित श्रीठाकुरजी की बाल-भाव सों सेवा करी। सो श्रीठाकुरजी ने पुत्र दियो। परन्तु रामदासजी के फल कों नहि पायो। रामदास कों कबहू लौकिक कामना में मन न भयो। तातें श्रीआचार्यजी प्रसन्न रहते। तातें रामदास के भाव की कहां तांइ कहिये।

सो रामदास श्रीआचार्यजी महाप्रभु के एसे कृपापात्र भगवदीय हते सो इनकी वार्ता कौ पार नहीं सो कहां तांई लिखिये। वैष्णव ७ (८४ मध्ये) (६६मध्ये वैष्णव १५भए)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक गदाधरदास कपिल सारस्वत ब्राह्मण कड़ा में रहते तिनकी वार्ता और ताकौ भाव कहत हैं—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश—

सो गदाधरदास मकरस्नान कों तीर्थराज प्रयाग बरस के बरस जाते। सो एक समय गदाधरदास प्रयाग में रहते। तहां श्रीआचार्यजी पधारे। सो पंडित सब श्रीआचार्य जी सों चर्चा करन आवते। सो गदाधरदास कौ काका प्रयाग रहतो, तहां गदाधरदास उतरते। सो गदाधरदास को काका पण्डित हतो, परन्तु सैव हतो। सो काका ने

गदाधरदास सों कही, श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं । तिनसों कछु सन्देह पूछनो है, सो मैं जात हों । तब गदाधरदास कहे, जो मैं हूं चलूंगो, सो दोऊ आए । तब गदाधरदास के काका ने श्रीआचार्य जी सों पूछ्यो, जो महाराज ! ठाकुर तो एक है परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय में न्यारे न्यारे क्यो मानत हैं ? कोई कृष्ण कों, कोई राम कों, कोई नृसिंघ, कोई नारायण आदि, तामें निश्चय कौन ठाकुर ? तब श्रीआचार्यजी कहे जैसे चक्रवर्ती राजा को राज तो सगरी पृथ्वी पर, और राजा देस देस के गाँव गाँव के, सोऊ राजा कहावें, परन्तु चक्रवर्ती के आज्ञाकारी । तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सो सर्वोपरि । और अवतार अंस कला करिके होइ, सब श्रीकृष्ण के आज्ञाकारी । ठाकुर सब कों कहिए । तब गदाधरदास को काका चुप करि रह्यो । गदाधरदास दैवी जीव तिनके मन में सिद्धांत बैठि गयो । जो श्रीआचार्यजी को सरन जइए तो श्रीकृष्ण की प्राप्ति होइगी । तब गदाधरदास ने श्रीआचार्यजी कों दण्डवत प्रणाम करि बिनती किये, महाराज ! सरन लीजिए । मैं संसार में बहोत भटक्यो । तब श्रीआचार्यजी ने कही, जो तुम अपने काका कों तो पूछो । इनको चित्त दुख पावै तो सेवक काहे कों होउ ? तब गदाधरदास के काका ने कही, महाराज ! हमारे तो गायत्री मंत्र सों काम है, और तो हम जानत नाहीं, गदाधरदास की ए जाने । ना हम हां कहें, ना हम ना कहें । तब गदाधरदास ने कही, अब मैं आप को दास भयो । अब संसारी जीव सों व्योहार मेरे नाहीं है । तातें मैं आपु के सरन आयो हों, कृपा करिके सरन लीजिए । और यह बहिर्मुख कब कहेगो जो - तू सेवक होउ । या प्रकार गदाधरदास के बचन सुनिके गदाधरदास को काका उहां तें उठि बाहर आइ ठाढो भयो ।

तब श्रीआचार्यजी गदाधरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भए। कहे, बिना सेवक ऐसी टेक है तो सेवक भये, भलो वैष्णव होइगो। तब आचार्य जी कहे जा त्रिवेणी न्हाइ आव। तब गदाधरदास न्हाइ के अपरस में आए। तब श्रीआचार्य जी ने नाम सुनाइ ब्रह्म सम्बन्ध करायो। पाछे गदाधरदास ने बिनती कीनी महाराज अब मोकों कहा कर्तव्य है? सो आज्ञा दीजे। तब गदाधरदास सों श्रीआचार्यजी कहे, जो तुम भगवत्सेवा करो। स्वरूप कहूं ते लावो। तब गदाधरदास ने बिचारयो जो एक स्वरूप ये मेरे काका के घर है, सो कैसे मिले? मैं तो या बहिर्मुख सों बोलत नाहीं हों। यह बिचार करत बाहर निकसे, माला तिलक करिके। सो गदाधरदास के काका ने पूछो जो-सेवक भयो सो भली करी परन्तु मेरे घर तो चलो। तब गदाधरदास ने कही मोकों तिहारे घर में ठाकुर हैं सो देउ तो मैं चलों। तब उन कहीं जो ले जाउ। मेरे ठाकुर सों कहा काम है? तब गदाधरदास काका के संग वाके घर गये, श्रीठाकुरजी मांगे। तब उन कह्यो खानपान तो करो, दुपहर भयो है। श्रीठाकुरजी पाछे ले जैयो। तब गदाधरदास ने कही अब हमारे तिहारे जल—व्यौहार नाहिं। श्रीठाकुरजी देउ फेरि तुम श्रीठाकुरजी सों काम न राखो तो देउ। तब काका ने कहा, हम सैव मार्गीय हैं। हम सों ठाकुर सों कहा? हम तो महादेवजी कों जानें। तातें बेगे ले जाउ।

श्रीठाकुरजी गदाधरदास के काका कौ मन यातें फेरे जो। भगवदीय जाको घर छोड़े तहाँ श्रीठाकुरजी हू न रहें। यातें बेगि दिए। तब श्रीआचार्यजी पञ्चामृत स्नान कराइ श्रीमदनमोहनजी नाम धरयो। गौर स्वरुप हैं। तब तीन दिन गदाधरदास श्रीआचार्य जी पास रहे। सेवा की सिगरी रीति सीखे सो श्रीआचार्यजी "भक्तिवर्द्धिनी" ग्रन्थ किए,

ताको व्याख्यान किए । तामें यह कहे जो- "अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः । व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा ।' तामें मुख्य सेवा अव्यावृत्त होय यह कहे। तासों उतरती व्यावृत्त कहे। हरि में मन राखे । यह सुनत ही गदाधरदास ने सङ्कल्प किए जो-व्यावृत्ति कछु न करनी। पाछे श्रीआचार्यजी महाप्रभुन सों बिदा होइ ओरछा वे अपने घर आए । सो इनको ब्याह तो भयो न हतो, मां बाप हू न हते । इनहू की अवस्था बरस तीस की हती । सो सगे सम्बंधीन सों कहे अब तुम और घर में जाइ रहौ, मैं वैष्णव भयो । मेरे तिहारे जल-व्यौहार नाहीं । तब और घर में जाइ रहे । गदाधरदास सिगरो घर खासा करि सेवा श्रीमदन-मोहनजी की प्रीति सों करन लागे ।

वार्ता प्रसंग १—सो गदाधरदास कों श्रीमदन-मोहनजी सानुभावता जतावते । आगे जजमान के घर जाते, जो चहिये सो लें आवते । वैष्णव भये पाछें अव्यावृत से रहते । सो सब ठौर कौ जानो छोड़ दियो । जो आवे तामें निर्वाह करें । चित्त मानसी सेवा फलरूप में इन को लग्यो । "चेतस्तत्प्रवणं सेवा" या भाव में मगन रहें । तनुजा, वित्तजा जो बने सो करें । बहोत संग्रह करे नांही । जो आवे ताकी सामग्री करि श्रीमदनमोहनजी को भोग धरें । वैष्णव कों महाप्रसाद लिवाइ देते । या प्रकार त्याग पूर्वक रहते।

सो एक दिन भगवद् इच्छा तें जजमान के घर तें कछु आयो नाहीं ।

भाव प्रकाश--ताको कारण यह जो श्रीठाकुरजी ने इनकी परीक्षा लिए। जो अव्यावृत्त को संकल्प तो होनो सहज ही है परन्तु न मिलै तब धीरज रहै यह महा कठिन है। तातें कछू न आयो।

तब मंगला में जल की लोटी भोग धरे। सिंगार में, राज-भोग में जल ही धरें। पाछे उत्थापन में सेन पर्यन्त जल ही धरें। परन्तु उधारो न लिए।

भाव प्रकाश--काहे तें यह ब्यौहार है। और उधारो लेय जहाँ ताँई वाको द्रव्य न देय तहां ताँई वाकी सेवा है। इनकी नाहीं। और काल को प्रमान नाहीं। उधारो लियो, देह छूटिजाय तो रिन माथे रहै, जन्म लेनो होइ। यह शास्त्र में कहे हैं। परन्तु इनके तो कालको डर नांही। अव्यावृत श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके ग्रन्थ को आश्रय किए।

ऐसे करत रात्रि प्रहर डेढ गई, सोइ रहे। परन्तु छाती में आगि सी लागी जो- आजु मेरे ठाकुर भूखे रहे।

भाव प्रकाश--याको हेतु यह जो- जद्यपि ये जल धरि के मानसी में सब आरोगाए हैं, श्रीठाकुरजी अरोगे हैं। काहे तें येहू श्रीराधा सहचरीकी सखी हैं। 'कलकंठी' इनको नाम है। कुमारिका के जूथ मे हैं। इनकों श्रीयमुनाजी को आश्रय है। राधा सहचरी के गान समय ये सुर भरत हैं। इनहूं को कंठ बहोत सुन्दर हैं। तातें जमुनाजी के भाव सों सिगरे भोग में जल ही धरे। तातें सिगरी सामग्री भाव करि सिद्ध हैं। परन्तु या सामग्री में वैष्णव को समाधान नांही। सिगरी इन्द्रिय

की सेवा नाहीं, सामग्री हाथसों धरै और व्रज भक्तन की मानस। हू करै। और श्रीठाकुरजी को न्यारो मनोरथ हू करै। यह पुष्टिमार्ग की रीति है। जो सामग्री हाथ सों भोग धरन में प्रीति न होइ तो व्रज भक्तन के भाव हू छूटि जाँइ। ज्ञान मार्ग की रीति व्है जाइ। "पत्रंपुष्पं,फलं,तोयं,योमेभक्त्या प्रयच्छति"। या वाक्य में बोध अर्थ है। मर्यादा मार्गीय के भाव में पत्र, पुष्प, फल, जल जैसो बन्यो सो धर्‍यो। सामग्री को आग्रह नांही है। और गीता में कहे जो भक्त धरै। यामें यह अर्थ जो भक्त होइ सो चारों वस्तु विवेक पूर्वक धरै। स्नेही होय ताको भक्त कहिए। तामें पत्र जो पान तथा पोई के पात, अरु रुइ (अरई) के पात तिनके पत्रोडा करि स्नेह सों सँवारि धरै। ज्ञानी कों स्नेह नांही, सो मीठे करुई सगरे पत्ता धरै। और फूल में गुलाब के फूल कों खांड में सामग्री करि प्रेम सों अरोगावै। फल सुन्दर मीठे करुवे चाखि के धरै। सो भक्त होय तो चाखै। जद्यपि मर्यादा में भीलनी सवरी हती, सो बन के फल कों खाइ के धरै, जो फल जहरी कोई कीरा को खायो होइ तो पहले मोकूं दुःख होइ। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी कों मति होइ। तब श्रीरामचन्द्र-जी सराहना किए। जो एसे फल दसरथ पिता के घर और जनक विदेही के इहाँ ब्याह में हू नाहि खाए। सो यहां एसी प्रीति नांही। भक्त सँवारि के धरै ज्ञानी जैसे मिलै तैसे धरै। तातें गदाधरदास तो पुष्टिमार्गीय लीला संबंधी हैं जो भावपूर्वक जल धरें। परन्तु स्नेही हैं तातें छाती में आगि लागी जो-आजु कछू न आयो। सो छाती में विरह रूप आगि लागी। जो—आजु कछू नाहिं धर्‍यो जो - वैष्णव के निर्वाह बिना श्रीठाकुरजी भूखे ही हैं। या प्रकार को गूढ़भाव जिनके

हृदय को है। और श्रीठाकुरजी कों बिरह कौ दान करनो है तातें कछू न आयो। सो छाती में विरह रूपी आगी लागी। मुख्य अधिकारी भए। जिनकों विरह नांही उनकों पुष्टि-मार्ग को फलनांही। या प्रकार डेढ प्रहर रात्री गई।

सो तब एक जजमान आयो। गदाधरदास कों पुकारि, किवाड़ खोलाय के रुपया ४) और कछू वस्त्रादिक दियो। और कह्यो जो आजु मेरे सुद्ध श्राद्ध हतो ताकी दक्षिणा लेहु। यह कहि उह घर गयो। तब गदाधरदास कों हृदय में विरह बहोत जो बेगिही कछू धरिए। यह भावसों एक रुपैया ले सामग्री लेनकों बजार में बेगे गए। सो एक हलवाई जलेबी करत हतो। सो देखत ही वासों पूछी यामेंते काहूकों दीनों तो नाहीं। तब उन कही अब करी है; बेची नांही। तब रुपैया दै, कहे बेगि तोलदें। सो लेकै आइ घरमें न्हाइ, श्रीठाकुरजी कों भोग धरी। पाछे श्रीठाकुर जी कों पोढाइ वैष्णवनकों बुलाई महाप्रसाद सब लिवाइ दियो। आपु भूखेई सोई रहे। परन्तु मनमें सुख पाए। जो श्रीठाकुरजी आरोगे। और वैष्णव कौ नागो न पर्यो। पाछें तीन रुपया कौ सीधो सामान लाइ सामग्री करि भोग धरि पाछें श्रीठाकुरजी को पोढाइ वैष्णवन कों बुलाई महाप्रसाद की पातरि धरी। तब वैष्णव महाप्रसाद लेति बोलें, जो- गदाधरदास रात्रिकों तुम महाप्रसाद दिए सो यह सामग्री तो हमहू करत हैं परन्तु एसो स्वाद नाहीं होत। सो एसी क्रिया हमहू कों बतावो। कैसे करी हती? तब गदाधरदास

ने कही, कालि मेरे घर कछू न हतो। सो रात्रिकों रुपया चारि आए। एक रुपैया की जलेबी बजार सों लायो। या प्रकार सब कहें। तब सिगरे वैष्णव गदाधरदास की ऊपर प्रसन्न भए।

भावप्रकाश— ताको हेतु यह है जो- श्रीठाकुरजी श्रीआचार्यजी इनके ऊपर प्रसन्न हैं। सो सिगरे वैष्णवन के हृदय में हैं। बुद्धि के प्रेरक श्रीकृष्ण हैं * तातें निष्कपट शुद्ध भाव वारे वैष्णव पर कोई अप्रसन्न न होय। या प्रकार वैष्णव प्रसन्न भए। तब गदाधरदासजी ने एक कीर्तन गायो—

"गोविंद पद पल्लव सिरपर बिराजमान।
तिनकों कहा कहि आवै सुखको प्रमान।
व्रज दिनेस देस बसत कालानल हून त्रसत,
बिलसत मन हुलसत करि लीला रस पान ॥ १ ॥
भींजे नित नैन रहत, हरि के गुनगान कहत,
जानत नहिं त्रिविध ताप मानत नहिं आन।
तिनके मुख कमल दरस, पावन पदरेनु परस,
अधम जन 'गदाधर' से पावत सन्मान ॥ २ ॥

जो मैं अधम जन हों परन्तु तुम भगवदीय हो सो मो सारिखे को सन्मान करत हो। या प्रकार वैष्णवन में और श्रीठाकुरजी में द्रढ प्रीति एक रसहती। तातें श्रीठाकुरजी और वैष्णव इनके बस हते। एसे गदाधरदास उत्तम भगवदीय हे।

---

* बुद्धि प्रेरक श्रीकृष्णस्य पाद पद्म प्रसीदतु।

वार्ता प्रसंग २– और एक दिन गदाधरदास ने वैष्णव महाप्रसाद कों बुलाए हते । सिगरी सामग्री करी परन्तु साग कछू न हतो तब गदाधरदास ने वैष्णव बैठे हते तिनसों कही– एसो कोई वैष्णव है जो साग ले आवे ? सो माधोदास, बेनीदास के भाई जिनने वेस्या घर में राखी हती सो बोले, कहो तो मैं ले आऊं ।

भावप्रकास— ताको आसय यह जो मैं वेस्या राखी है मेरो लाया लेहुगे ?

तब गदाधरदास कहे ले आवो ।

भावप्रकास– सो गदाधरदास के हृदय में दोष दृष्टि नांही है । श्रीआचार्यजी को संबंध जानत हैं । तातें कहे ले आवो ।

तब बथुवा की भाजी ले आए । तब गदाधरदास प्रसन्न है कें कहे, बेगे संवारि देउ ।

भावप्रकास— यामें यह जताए जो प्रीति सों लाए । तब सँवारिवे की मुख्य सेवा हू दिए । तामें जताए जो सेवा प्रीति सों करै । कैसे हू होउ ताके हाथ को श्रीठाकुरजी प्रीति सों अंगीकार करें ।

पाछें सामग्री सिद्ध करी श्रीठाकुरजी कों भोग धरें । समय भए भोग सराइ अनोसर करि सिगरे वैष्णवन को महाप्रसाद की पातरि धरें । सो सब वैष्णव महाप्रसाद लेत साग बखान्यो । तब गदाधरदास परोसत माधवदास पास आए तब

प्रसन्न होइकै माधोदास सों कहे जो तिहारो लायो साग श्रीठाकुरजी आरोगे। तातें तोकों हरिभक्ति दृढ होऊ। यह आसीर्वाद दिए।

भावप्रकाश— यामें यह जताए जो रंच सेवा साग की माधोदास किए। तातें श्रीठाकुरजी प्रीतिसों आरोगे। यह तब जानिए जो वैष्णव प्रसाद लेइ सराहना करें। तब कोऊ सेवा सिद्ध होय और भगवदीय समान उदार कोऊ नांही जो रंच साग की सेवा किए जनम जनम कौ संसार मिटाइ हरि भक्ति करि दिए। एसे गदाधरदास भगवदीय हे।

वार्ता प्रसंग २- और एक-दिन गांव के बाहिर बनजारा आइ उतरयो। ताकों बैल चहिए सो गाम में आइ दस पंद्रह गदाधरदास के सगे ब्राह्मण बैठे हते। सो गदाधरदास की ईर्षा करते जो भगत भयो है। सो बनजारे ने उन ब्राह्मण सों पूछयो हमकों बैल मोलकों लेने से कहां मिलेंगे ? तब उन ब्राह्मणन ने कही गदाधरदास भगत है उनके यहां जितने चाहिए तितने लेहु। परन्तु योंतो वे न देइंगे। उनके पास रुपैया दे आवो। कहियो हमकों जहां सो चाहो तहां सों मंगवाइ देहु। पाछे दुसरे दिन जइयो। तब बैल तुमकों मिलेंगे। तब बनजारा १००) रुपया लै गदाधरदास के पास गयो। कह्यो हमको बैल लेने हैं। सो तुम मंगाइ देहु। तब गदाधर दास ने कही - बाबा हमारे बैल कहां ? गाँउ में पूछो, हमतो जानत नांही। तब बनजारे ने १००) रुपैया गदाधरदास के आगे धरि दिए। उठिचल्यो कह्यो कालि बैल लेन आऊँगो। मोसों गांउ के लोगन ने

या भांति बताए हैं। तब गदाधरदास ने जानी जो हमारी जाति के ने याकों बहकायो होइगो। तब गदाधरदास ने कही कालिह मध्याह्न समेतो न देखोगे। तौऊ बनजारा प्रसन्न होइके कहै; जो आछो। यह रुपैया राखो।

पाछें गदाधरदासजी १००) रुपैया की सामग्री मगाए। सिगरे पाक सिद्ध करि दूसरे दिन भोग धरे। फेरि सिगरे वैष्णवन कों परोसत हते मध्याह्न समे तब बनजारा आयो। तब गदाधरदास ने कही भले समय आयो। ए सब ठाकुरजी के बैल हैं। यामें बछरा हू हैं, तरुन हू हैं। जैसे चाहिए तैसे देखि लेहु।

भावप्रकाश— याको आसय यह- बैल धर्म को रूप है। सो गदाधरदास कहे आजुके काल में धर्म इन वैष्णवन में है। सो धर्म लेनो होइ तो देखिले। बैलकों यह जा कारज में लगावै सोई करै। नाँही न करै। जो खवावै सोई खावै। संतोष करै तैसे ये वैष्णव हैं। जाजा कार्य में चलत हैं सो प्राप्त होय। तामें संतोष हैं।

सो बनजारे की सामग्री श्रीठाकुरजी अरोगे। वैष्णव महाप्रसाद लिए। और गदाधरदास प्रसन्न होइके कहे। सो उह बनिजारे कों ज्ञान होइगयो। जो एतो भगवद्भक्त हैं। गांउ के लोगन ने मसखरी करी, लराइवे को उपाइ करयो हतो। परन्तु मेरे बड़े भाग्य हैं। जो या मिष मो सारिखे की पापी सत्ता अंगीकार किए। अब मैं इनकी सरन

जाऊंतो । कृतार्थ होऊं । तब साष्टांग दंडवत् गदाधरदास कों करि कह्यो मैं रात्रि दिन संसार समुद्र में भटकत हों । अब तिहारी सरन आयो हुं । मेरो उद्धार करो । तब गदाधरदास ने कही हमतो सेवक करत नांही । परन्तु ए सगरे वैष्णव और हम श्रीआचार्यजी के सेवक हैं, सो अड़ेल में बिराजत हैं, तिनके सेवक होउ । पाछें गदाधरदास ने दैवीजीव जानि वाको महाप्रसाद दिए । तब वनजारा अड़ेल आई श्रीआचार्य जी पास नाम पाइ कृतार्थ भयो ।

भावप्रकाश— यामें यह जताए जो भगवदीय के एकक्षण के संग तें जो उत्तम जीव होय तो वाकौ कार्य है जाइ गदाधरदास एसे भगवदीय हे इनके हृदय को अगाध भाव है सो कैसे कह्यो जाय सो वे गदाधरदासजी श्री आचार्यजी महाप्रभुन के एसे कृपापात्र भगवदीय हे । तातें इनकी वार्ता को पार नहीं सो कहाँ ताई लिखिए । वैष्णव ८ (८४ मध्ये) (६६ मध्ये वैष्णव संख्या १६)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक बेनीदास माधवदास दोऊ भाई छत्री हते कडा में रहते तिनकी वार्ता और ताकौ भाव कहत हैं—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

बेनीदास वृषभानजी के गाडा कौ बैल है । सो 'ऋषभ' सखा कों सींग मार्‍यो सो तीन दिन 'ऋषभ' सखा दुख पायो । ताके शाप तें गिरे भूमि पर । और माधवदास 'रतनप्रभा' ललिताजी की सखी है : सो इहां भगवद् इच्छा ते दोऊ भाई भए । परन्तु मन मिले नांही । सो माधौदास ने वेस्या घर में राखी हती, सो वैष्णव सब निंदा करते । परन्तु

उह वैष्णव दैवी हती। चंद्रावलीजी की सखी 'चन्द्रलता' लीलामें इनको नाम हतो। सो अलौकिक संबंध बिना दैवी जीव की दृढ प्रीति बंधे नांही।

वार्ताप्रसंग १– पाछें एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु कडा में पधारे। तब सिगरे वैष्णव दरसन कों आए. पाछें माधौदास सुने। सोऊ आय श्रीआचार्यजी कों दंडवत् कियो। तब सिगरे वैष्णव दरसन कों आए। तब सिगरे वैष्णवन नें श्रीआचार्यजी सों कही– महाराज माधौदास ने वेस्या राखी है। तब श्रीआचार्यजी पूछे, क्यों माधौदास वैस्या राखी है? तब माधौदास ने कही, महाराज मेरो मन वाके ऊपर आसक्त है। तातें राखी है। या प्रकार तीनि बेर श्रीआचार्यजी पूछे। तीनों बेर माधवदास ने कही महाराज! मेरो मन वा पर आसक्ते है, तातें राखी है। तब श्रीआचार्य जी चुप है रहे।

भावप्रकाश— याको अभिप्राय यह, जो प्रथम वैष्णव निंदा करते। सोऊ माधोदास कों वेस्या को संग छुडावन कों। जो निंदा ते लाज पाइ छोडेंगे। यातें करते। अपने भाई जानि कें, ईर्षा द्वेष भाव नाहिं हतो। जो द्वेष होइ तो सिगरेन कों बाधक होई। पाछें श्रीआचार्यजी सों वैष्णवन ने कही। सोउ माधौदास के लिए जो श्रीआचार्यजी के कहे तें छूटै तो आछो। लौकिक में वैष्णव की निंदा होत हैं सो छूटै। सो श्रीआचार्यजी सब लीला को प्रकार जानत हैं। तातें कहें क्यों रे माधौदास! तू वेस्या राखे है? यह कही। यह कहते- जो

वेश्या कौ संग छोड़ दे तोकों बाधक है। तो माधौदास छोड़ि देते। आपु बड़ाई करी। क्यों रे माधौदास वेश्या सरीखी हीन को अंगीकार करि राखे? संसार में बड़ी जात हती। लौकिक सोंउ न डरप्यौ? तब माधौदास कहे- मन वा पर आसक्त व्हे गयो। जो याकों कहूं ठिकानो नाहीं है तातें संसार की लाज सरम वैष्णव कीहू कानि छोड़ि राखो है। सो मैं नाही राखी मनके प्रेरक आपु हो। आपुही वापर आसक्त कियो सो आपुही राखो है। या प्रकार तीनि बार कहे। सो यातें जो- साँची प्रीति होइगी (तो) एक दृढ बचन साँचे निकसेंगे। सो साँचे ही तीनिबार माधौदास ने कही। तब आपु प्रसन्न भए। जो एसे टेक के वैष्णव दुर्लभ हैं।

तब सिगरे वैष्णव श्रीआचार्यजी महाप्रभुनसों कहें- महाराज! अब तांई तो आपु की कानि हती। अब आपु सों हू कहि छूट्यो। आपु वासों कछू कहे नांही?

भावप्रकाश— यह कहे जो- यातें जो वैष्णवन कों बड़ी चिंता भई जो आपु आगे कहि दियो। अब याको कैसे कल्यान होइगो? यह चिंता करि फेरि वैष्णव ने कही आपु यासों कछू कहे नांही? सो कहो, यह जताए।

तब श्रीआचार्यजी वैष्णवन को समाधान कियो। तुम चिंता मति करो। याकौ मन वापर आसक्त है सो श्रीठाकुरजी कों फेरत कितनीक बार लगेगी। और गदाधरदास ने याकों आसीर्वाद दियो है जो हरि भक्ति दृढ होइगी सोई यह माधौदास है।

भावप्रकाशः—यह कहि यह जताए जो याकी चिन्ता तुम मति करो। यह संसार में परिवेवारो नाहीं है। वेस्या आदि औरहू कों संसार तें काढन वारो है। गदाधरदास ने दृढ़ भक्ति दीनी सो मैंने दीनो। अब जो मैं हठ करिके छुड़ाऊं तो गदाधरदास भगवदीय की कृपा केसें जानी जाय। यातें गदाधर दास ने हरि भक्ति दीनी सो दृढ होइगी। तुम याकी चिंता मति करो।

तब सब वैष्णव प्रसन्न होइके चुप ह्वै रहे। ता पाछे माधोदास को मन फिरयो। सो वेश्या दूरि कीनी। वैष्णव की रीति मर्यादा में चलन लागे। भले वैष्णव भए।

भाव प्रकाश— यामें यह जताए जो वेश्या कों दूरि कीनी सो यह अर्थ वेस्या कों बताए जो तू श्री गुसाँई जी की सखी है। जब श्री गुसांई जी पधारेंगे तब तेरो कार्य होइगो। तातें अब हमसों तो सों न बने। यह कहि के काढे। तब वह वेस्या बिना घी की चुपरी रुखी अँगाखरी खाइ के निर्वाह पन्द्रह वर्ष लों कियो। पाछें श्रीगुसांई जी कड़ा में पधारे, तब वेस्या ने सुनी। तब श्रीगुसाँईजी सों आइ विनती करी, महाराज! मेरो अङ्गीकार करिए। तब श्रीगुसाँई जी कहे हम वेश्या कों सेवक नांही करत। तब घर आइ कें परि रही। अन्न, जल छोड़ दियो। सो आठ दिन श्रीगुसांईजी कड़ा में रहे। दूरि तें वेस्या दरसन करि आइ। पाछें नोमें दिन श्रीगुसाँईजी पधारन लागे। तब वेस्या दोइ मनुष्यन के हाथ पकरि कें आई। कह्यो महाराज! आजु नोमो दिन है। बिना अन्नजल मेरे अब प्रान छूटेंगे, जो आपु अंगीकार न करोगे। तब श्रीगुसांईजी ने जानी जो अब याको दोष दूरि भयो सुद्ध भई। तब उह वेस्या कों नाम सुनायो। पाछें उह ब्रह्मसम्बन्ध की विनती

करी, महाराज ! माधौदास कहि गए हैं जो तू श्रीगुसाईंजी की दासी है। सो आप के लिये पन्द्रह बरस लों सूखा अन्न-करी खाय देह राखी। अब नौमें दिन तें जल हू त्यागो है। और जो मोकों आज्ञा करो सो मैं करों। मैं तो दुष्ट हों, परन्तु माधौदास के सम्बन्ध तें मोकों श्रीआचार्य जी महाप्रभुन के दरसन हू भये, और आप के हू भए। तातें मोकों ब्रह्मसंबन्ध कराइ मेरे माथे भगवत् सेवा पधरावो, तो मेरे प्रान रहेंगे। तब श्रीगुसाँइजी सुद्ध भाव देखिके ब्रह्मसम्बन्ध कराए। लालजी पधराय दिये। वैष्णवन सों कहे याकों रीति भांति सब बताइ दीजो, ता प्रकार यह सेवा करै। ऐसें करत वेस्या कों अटकाव भयो। सो वैष्णव तो बरजे जो चारि दिन लों कछू मति जलादि छुवो। परन्तु वाकों विरह प्रेम बहोत सो रह्यो न जाइ, अटकाव में सेवा करै। पाछें पांचवें दिन अपरस काढै। श्रीठाकुरजी कों पञ्चामृत स्नान करावै। सो वैष्णवनने उनसों व्यवहार छोडि दियो। पाछें कछुक दिनमें श्रीगुसांई जी कहां पधारे तब सबनने श्रीगुसांईजी सों कही, महाराज ! वह वेस्या अटकाव में हू बहोत बरजे परन्तु मानत नाँही, सेवा करत है। पाछें वेश्या सों ऐसे सुने श्रीगुसांईजी निकट बुलाइ कहे—अटकाव में लोटी क्यों भरत हो ? तब वेस्या ने कही महाराज ! मेरे जितने रोम हैं इतने धनी लौकिक में किए। सब आपकी कृपा तें छूटे। अब एक धनी अलौकिक आपु करि दिये, तिन बिना कैसे चारि दिन रह्यो जाइ ? सो आपु तो अन्तर्यामी हो। एक छन को अन्तराइ सह्यो नहिं जात है। अरु पाँचवे दिन अपरस हू काढि पञ्चामृत सों श्रीठाकुरजी कों स्नान करावत हों। यह मर्यादा हू राखत हों। अब आप सब के अन्तर की जानत हो। जो आज्ञा देउ सो करों। तब श्रीगुसांई जी याके ऊपर श्रीठाकुरजी प्रसन्न देखि कैं कहे जैसे करति है तैसेई करियो। या प्रकार वाको समा-

धान करि घर पठाई। जो बेगि जा, तेरे लिए श्री ठाकुर जी बैठि रहे हैं। तब वह दंडोत करिके गई।

पाछें श्रीगुसांईजी वैष्णवन सों कहें, जो वह वेश्या करै, वासों मति कछू कहियो। वाकी देखादेखी और कोई मति करियो. वापर श्रीठाकुर जी वाही भाँति प्रसन्न हैं तुम पर मर्यादा ही सों प्रसन्न होइगे। या प्रकार उह वेश्या कों माधौदास के संग तें प्रेम भयो।

वार्ता प्रसंग २— माधौदास बेनीदास सों मिलि के रहते। सो एक दिन मोतीकी माला बहोत मोल की भारी बिकान आई। सो देखिकै माधौदास ने बेनीदास सों कही, यह माला श्रीनवनीतप्रियजी लाइक है, सो लेहुं। तब बेनीदास ने कही, माला की कहा है। हमारे जो कछू वस्तु है सो सब श्रीठाकुरजी की ही है। यह कहिके बात टारि दिए।

भाव प्रकाश—यामें यह जताए, जो संसार में आसक्त होय सो लोगन के दिखाइबे के लिये सब श्रीठाकुरजी को कहै। परन्तु श्रीठाकुर जी के लिए खर्च न करै।

तब माधौदास नें कही जो- सब श्रीठाकुरजी कौ है तो श्रीठाकुरजी के लिए माला क्यों नांहि लेत? तब भाई बेनीदास ने कही जों हमसों कैसे लीनी जाइ? तब माधौदास ने कही जो मेरो द्रव्य बांटि देहु। मैं तुमसों न्यारो रहूंगो।

भाव प्रकाश—यामें यह कहै- तुम बैल हो, सो केवल गृहस्थाश्रम को व्यौहार लादो। हों तो न्यारो रहि मनोरथ करूंगो।

सो द्रव्य आधो बाटिके न्यारे भए। सो थोरो द्रव्य। हतो सो माला लिनी न गई। परन्तु मन मे यह जो- एसी श्री नवनीत प्रियजी कों अंगीकार होई। सो द्रव्य लै के दक्षिण कमावन गए। और यह माला कों माधौदास ने अलौकिक अंगीकार विचारें। सो लौकिक में जाहि नांहि सो प्रयाग में बिकन आई। तब प्रयाग के वैष्णव मोल लें श्री आचार्यजी कों दिए। श्री आचार्यजी ने श्री नवनीत प्रियजी कों पहराए।

उहां माधौवदास नें द्रव्य बहोत कमायो सो पहिली माला तें उत्तम मोल लेके चले। सो मारग में एक बड़ी नदी आई। तहां नाव पर बैठे और हू बहोत लोग बैठे और नाव मध धारा में जब आई तब श्रीनवनीतप्रियजी लाल छरी लेकै आऐ। सो एक माधोदास को दरसन भए तब श्रीमुख तें कहे नाव डुबाऊँ? तब माधोदास कहै निजेच्छातः करिष्यति। तब श्रीवनीतप्रियजी कहे तू कहां गयो हतो तब माधोदास कहे माला लेन गयो हों। तब श्रीनवनीतप्रियजी कहैं, कहा हमारे माला नांहि है? देखि उहि माला। श्रीआचार्यजी धराए हैं और मेरे बहो तेरी हैं। तब माधोदास कही महाराज! आपके बहोतेरी हैं परि सेवक को यह धर्म नांहि जो बैठे रहे। उद्यम करनो। तब नाव डुबत तें रही।

भाव प्रकाश—श्रीठाकुर जी नाव पर आइकें कहें सो बातें जो तेरे पीछे मोकों इच्छिन आनो परयो, सो तू क्यों गयो ? मेरे कहा माला नाँहीं है ? तातें नाव डुबाऊं तो तू कहा करै ! मनोरथ तेरो धर्यो रहै । तब माधोदास कहै "निजेच्छातः करिष्यति" । सो "निजानां सेवकानां इच्छा करिष्यति" । जो भक्तन की इच्छा होइ सो ही सदा आपु करत आए हो । "भक्त मनोरथ पूरकाय नमः" को आप नाम है ।* सो माला को अङ्गीकारि श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के द्वारा होइ । ता पाछे सरीर रूपी नाव डूबे ताकी मोकों कछू चिन्ता नाहीं है । जब तिहारी इच्छा में आवै तब डुबाइयो । और तिहारे माला बहोत हैं सो यामें मेरो कहा उद्यम । जोतिहारो मनोरथ कछू बनि आवैतो उद्यम सुफल है । नाहिं तो गृहस्थाश्रम हू वृथा पचि मरनो है । तातें सेवक को धर्म यह जो तिहारे अंगीकार को मनोरथ करत रहै । तब श्री-ठाकुरजी नाव डूबन तें राखी । नांही तो जैसे श्रीठाकुरजी नाव डुबावन की कही । तैसे माधोदास हू भगवान इच्छा कहते । भक्त की आज्ञा होइ तो डूबे ही । परन्तु निजेच्छातः कहे । निज जो भक्त तिनकी इच्छा माला अङ्गीकार करन की । या प्रकार कहे । और माधोदास कों तो नाव डूबन की चिन्ता नांही । परन्तु और हू नाव पर बैठे सो भक्त के संग बचे चहिये । वे कैसे डूबन माधोदास देहि ? तातें भगवदीय की बानी गूढ है । भगवान्, समझें, के कृपा होइ सो समुझें और नाव हाली हती तब सबको मुख सूखि गयो । मल्लाह ने कही, हमारे हाथ नाही है । ता समय माधोदास को मन प्रसन्न

---

*"दास चत्रभुज प्रभु के निजमत चलत लाल गिर धरन" એ કથન પણ અત્રે સ્મર્તવ્ય છે. —સમ્પાદક

है सो नाव डूबत तें रही। तब सबनमें कही जो ए महापुरुष बैठे हैं तातें नाव बची। नाहि तो सबरे डूबते।

पाछें पार उतरें। कछुक दिनन में श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के पास माधोदास आए। तब माधोदास सों श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने कही नाव डूबत तें कैसे रही? तब माधोदास ने सब समाचार श्रीआचार्य जी सों कहे। तब श्री आचार्यजी सिगरे वैष्णवन सों कहे। जो देखो यह वही माधौदास है कैसी टेक को वैष्णव भयो ता दिन तें माला को नाम 'माधोदास' कहे सो सिगरे कहत।

भाव प्रकाश—यह कहि यह जताए जैसे लीला में इन कौ नाम 'रत्नप्रभा' तैसे ही रतन जैसो प्रकास माधौ दास की वार्ता को है। ऐसे माधोदास भगवदीय हैं। या वार्ता में भगवदीय के आसीर्वाद को उत्कर्ष प्रगट कियो।

सो माधोदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हे। तातें इनकी वार्ता को पार नाहि सो कहां तांई लिखिए। वैष्णव ६ (८४ मध्ये) ६६ मध्ये वैष्णव १७ भए)

अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक हरिवंश पाठक सारस्वत ब्राह्मण कासी के, तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं—

हरिरायजी कृत भाव प्रकाश– ए लीला में "गति उत्तालिका" बिसाखाजी की सखी हैं। सगरी सेवा तत्काल सामग्री सिद्ध करत हैं। तातें इनकी चाल इनकी क्रिया उतावली सो वेग करत हैं। तातें बिसाखाजी इनपर बहोत प्रसन्न रहते।

सो हरिवंस पाठक पहलें गणेश के उपासक हते। सो जब श्रीआचार्यजी 'पत्रावलंबन' कासी में किए। पंडितन को जीतें तब हरिवंस पाठक के मन में आई जो मैं हूँ श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के दरसन करि आऊं। सो दरसन को आए। तब विप्र रूप देखिकें मन में आई जो ए ऊ ब्राह्मण हैं हम हूं ब्राह्मण हैं। ए पंडित हैं। सो मेरे कहा काम है। मेरे गणेस के दरसन में ढील लगे सो ठीक नांहि हैं। यह बिचारि दूरि तें देखि पाछे फिरे। सो घर में आइ गणेस की पूजा को सामान लै चलन लागे। सो द्वार पर ठोकर लगी, गिरि परे सो मूर्छा आइ गई। तब गणेस ने सपने में हरिवंस पाठक सों कहे, तू श्रीआचार्यजी के दरसन करे बिना मेरे पास आवत हतो सो मैं तेरो मुंह न देखोंगो श्रीआचार्यजी को अपराध कियो। श्रीआचार्यजी पूर्णपुरुषोत्तम हैं। तिनसों अपराध क्षमा कराइ मेरे पास आइयो। तब हरिवंस पाठक को सरीर की सुधि भई। सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन पास दोरयो आयो। दण्डवत करि बिनती करी, महाराज! आप पूर्णपुरुषोत्तम हो, मैं नहिं जान्यो। अब मेरो अपराध छमा करि सरन लेहु। तब श्रीआचार्यजी कहे हम हूं ब्राह्मण हैं तुम हुं ब्राह्मण हो। सरन आइवे की क्यों कहत हो? तब हरिवंस पाठक ने कही महाराज! हम तो अज्ञानी जीव हैं, संसार समुद्र में पड़े हैं। सो आप के स्वरूप को कहा हम जानें? हम तो गणेस के उपासक हैं। सो गणेस हु आप के अपराध सों

छरपत हैं। तातें मोकों तिहारे पास पठाए। जो अपराध छुमा कराइ आवो। सो मैं अब जान्यो जो हम सों बड़े आप हो, अब मोकों सरन लेहु। तब श्रीआचार्यजी सेठ पुरुषोत्तमदास के इहाँ उतरते हते। तहाँ हरिबंस पाठक को नाम सुनाए। तब हरिवंस पाठक ने बिनती करी महाराज! घर में स्त्री है एक बेटा एक बेटी है। ताकों अङ्गीकार करिये। तब श्री-आचार्य ने कही तुम भगवत् स्वरूप कहूं ते लावो। तब तेरे घर पधारि सबको नाम निवेदन कराइ श्रीठाकुर जी पधराय देइगे। तिनकी तुम सेवा करियो और की सेवामनि करियो। तब हरिवंस पाठक ने कह्यो महाराज पुरुषोत्तम पाये पाछे ऐसो को अभागो है जो और देवता के पाछे द्वार भटकैगो। यह कहि बजार में आइ कछू न्योछावर दे, एक छोटे से लालजी को स्वरूप लियो। सो श्रीआचार्यजी के पास आय बिनती करी, महाराज अब कृपा करिके वेगि पधारिए। काहे तें सरीर को भरोसो नाहीं और कदाचित कोई को काल आइ जाइ तो जीव को अकाज होइ। यह आरति देखि श्रीआचार्यजी महाप्रभु प्रसन्न होइ हरिवंस पाठक के घर पधारे। सिगरी अपरस सिद्धि कराई। सिगरे कुटुम्ब कों नामनिवेदन कराइ श्रीठाकुरजी कों पञ्चामृत सों स्नान कराइ पाट बैठारे। पाछें आप पाक करि भोग धरि भोजन किए। सबन कों जूठनि धरी। पाछे आप सेठ पुरुषोत्तमदास के घर पाँव धारे।

पाछें आप पृथ्वी-परिक्रमा कों पधारें। तब हरिवंस पाठक सों कहे जो सन्देह होइ सो सेठ पुरुषोत्तमदास सों पूछि लीजो। सो हरिवंस पाठक सेवा भली भाँति सों करत। श्रीठाकुरजी सानुभावता जनावन लागे।

वार्ता प्रसंग—सो एक समय हरिवंस पाठक पटना व्यौहार को गए हते। सो पटना के हाकिम सों बहोत मिलाप हतो। सो वह हाकिम मनमें अपने में जाने जो एकछु मांगे तो मैं इनको देंऊं सो एक दिन उह हाकिम ने कही मैं तुम ऊपर बहुत प्रसन्न हों, तातें तुम जो कछु मांगो सो मैं देहुं। तब हरिवंस पाठक ने कही, कोई दिन कछू काम परैगो तो कहूंगो। सो ऐसे करत डोल उत्सव के दिन निकट आए। तब श्रीठाकुरजी ने हरिवंस पाठक सों जताई जो तू डोल मोकों न झुलावेगो? तब हरिवंस पाठक मनमें विचारे अब कहा करिए दिन थोरे रहे, चलेसो तो न पहोचिये तब वह हाकिम पास गए और कहें कछू मांगत है सो मोकों दियो चाहिए तब वह हाकिम ने कहा जो चाहो सो मांगो। तब हरिवंस ने कही जो मोको दिन ३ में कासी पहोंचो चाहिए। तब वह हाकिम ने घोड़ा और मनुष्य साथ दिए। सो मजलि मजलि पर घोड़ा की डाक पर चले जाई घोड़ा मनुष्य पलटत जाई। सो ऐसे करत दूसरे दिन आइ पहोंचे। रात्रि को सब डोल की तयारी सिद्ध करि राखी दूसरे दिन झुलाए बड़ो सुख भयो। पाछे दिन दस पंद्रह रहीके पटना आए। तब वह हाकिम ने हरिवंस पाठक सों पूछी ऐसो घर में कहा जरूरी काम हतो जो यह मांग्यो कछु द्रव्यादिक मांगते, तो लाख रुपये की

रीझि देतो । तब हरिवंश पाठक ने कही जो हम ग्रहस्थ हैं । अनेक काम घर के हैं । सो गयो हतो । या प्रकार अपनो धर्म गोप्य राखे । ऐसे भगवदीय हे । ता पाछे बड़े उत्सव, छोटे उत्सव सिगरे घर आइ के करते ।

भाव प्रकाशः—यामें यह सिद्धांत जताए जो सनेही होइ सो उत्सव अपने ठाकुर पास करे तो ठाकुर प्रसन्न रहें, और श्री ठाकुर जी की सेवा को प्रकार काहू सों कहनो नाहीं जैसे हरिवंश पाठक उह हाकिम सों कछु न कहे यामें अद्यपि वैष्णव हते तऊ श्री ठाकुर जी के अनुभव बाम नाहीं कहीं । वैष्णव हस्त (८४ सम्ये) (८६ सम्ये वैष्णव १८ भए)

सो हरिवंश पाठक श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हे । तातें इनकी वार्ता को पार नहीं सो कहां तांई लिखिये ।

अब श्री आचार्य जी महाप्रभुजी के सेवक गोविंददास भल्ला क्षत्री थानेश्वर में रहते तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं ।

श्री हरिराय जी कृत भाव प्रकाश—सो गोविंददास थानेश्वर में सिपाहिगीरि करते हथियार बाँधते । थानेश्वर के हाकिम पास रहते । रुपैया पाँच सात को रोस पावते । सो थानेश्वर में श्रीआचार्य जी पधारे । तब थानेश्वर में बहोत जीव सरन आये । तब गोविंददास भल्लाने श्रीआचार्य जी महाप्रभुन सों बिनती करी, जो महाराज ! मेरे द्रव्य बहोत है, कहा करूँ । तब श्री आचार्य जी ने कही-

भगवत सेवा करो। तब गोविन्ददास भल्ला ने कही- महाराज स्त्री अनुकूल नांही है। ताको आसय यह जो देवी नांही है तब श्रीआचार्यजी कहें स्त्री को त्याग कर। तब गोविंददास ने स्त्री कों त्याग करि सिगरो द्रव्य लाइ श्रीआचार्य जी महाप्रभुन सों बिनती करी, महाराज! द्रव्य कों कहा करूँ स्त्री को तो त्याग करयो। तब श्री आचार्यजी ने कही यह द्रव्य के चार भाग करि एक भाग श्रीनाथजी की भेंट करि एक भाग स्त्री को दें। यातें जो- ब्याह भयो ताको छोड़े को दोष पूंजी दिये छूट्यो। वो भाग तू लेके भगवत सेवा कर। तब गोविंददास भल्ला नें कही, महाराज! कछु आपु अंगीकार करिए। तब श्रीआचार्य जी नें कही, भलो, एक भाग हम कों दे। तब गोविंददास ने द्रव्य के चारि भाग करे एक भाग श्रीनाथजी कों भेंट किए एक भाग श्रीआचार्यजी महाप्रभुन कों भेंट कियो। एक भाग स्त्री कों दियो। एक भाग को द्रव्य ले महावन में आइ रह्या। सो यातें जो गांव में स्त्री को प्रतिबंध परे। तातें महावन आइ मथुरानाथ जी की सेवा करन लागे।

वार्ता प्रसंग १—सो गोविंददास महावन में नित्य के चौबीस टका की सामग्री करें, भोग धरें। उहांइ मर्यादा मार्गीय वैष्णव कों खिवाय देई बचै सो गाइकों खवाइ देइ तामें तें आपु कछू न लेंइ। आपु न्यारि लाटी करि भोग धरि खांय।

भाव प्रकाश—याको आसय यह जो-महा बन में नन्द रायजी को देवालय करा: ब्राह्मण को पूजा सोंपी हती। सो

मर्यादा रीति सों करते। खरच नन्दराय जी देते। सो ठाकुर हते। ब्राह्मण पूजा करते। सो देवालय को आपु कैसे लेंइ? तातें न्यारी लीडी करि मन ही सों भोग धरि लेते।

ऐसे करत द्रव्य सब निपट्यो तब श्रीनाथजीद्वारि आइ श्रीगोवर्द्धनधर की परचारगी करन लागे। दाइ समय के पात्र मांजें। रात्रि पहर डेढ रहे पाछली, तब उठि देह कृत्य करि न्हाइ के गागरि ले मथुरा आइ श्रीयमुना जल की गागर भरि राजभोग पहले आवते। पात्र सब मांजि रसोइ पोति अपनी सब सेवा सों पहोंचि पर्वत तें नीचे आई, तिलक धोइ माला उतारि गांठि बांधि गोवर्धन के आसपास सो कोरी भिक्षा मांगि लावते। सो सेर पांच सात को आहार हू हतो। सो आहार लाइक आवे तब आइके अपने हाथ सों पीस रोटी करि श्रीगोवर्धनधर की ध्वजा को दिखाइ चरणामृत मिलाइ कें लेते। पाछें सेनभोग के पात्र मांजने। रसोई पोति सेवा सों पहोंचि सैन करते। या प्रकार सेवा करते। परन्तु श्री गोवर्धननाथजी को आछो न लागतो।

भाव प्रकाश—ताको कारन यह जो भाव प्रीति सों ऐसी सेवा करें, तो श्री गोवर्धनधर वाके पाछें लगे डोलते परन्तु गोविंददास भला सामग्री हते, सो अहंकार सों करते। स्त्री को त्याग हू अहंकार सों करयो। महावन में हू चौबीस टका की सामग्री रोज करते। सो अहंकार सों करते। इहां हू सिगरी सेवा अहङ्का तें करते। सरीर को कष्ट पावते।

हो ? तब श्रीगोवर्धनधर नें कही, जिहरो सेवक बाकों बहुत खिजावत है। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने सिगरे सेवक बुलाइ सेवा टहल महाप्रसाद की पूछे। सो सब सों सिखा दिये जो अहंकार मति करियो। तब गोविंददास सो पूछे सो वे सब कहें। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें श्रीनाथजी की रसोई में सिगरे सेवक महाप्रसाद लेत हैं। तुमहू लियो करो।

भाव प्रकाश—यह कहि यह जताए जो सिगरे सेवक की रीति चलो। अहंकार छोड़ो। और प्रभुअक्लिष्ट कर्मा है दुःख पाय अहंकार सों करिए सो प्रभु को भावें नांही।

तब गोविंददास ने कही महाराज! देवअंस कैसे लेहु

भाव प्रकाश—यामें यह भाव सों कहे जो सिगरे देव अंस लेत हैं मैं कैसे लेऊँ!

तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहे जो हमारी रसोई में महाप्रसाद लेउ।

भाव प्रकाश—ताको आशय यह जो आपकी रसोइ होइ, यह कहि यह जताए जो श्री गोवर्धनधर की सेवा छोड़ि हमारी करो। इहां रहो। सब सेवकन सों मिलिके चलो तो निर्वाह होय नाही तो हमारे पास रहो महाप्रसाद लेहु।

तब गोविंददास फेरि अहंकार करि कहें देव-अंस, गुरु अंस कैसे लेहुं! तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुननें कही जो सेवा छोड़ि देउ।

भाव प्रकाश—वामें यह जताए जो श्रीनाथ जी के यहां अहंकार किए तब सहज में सेवा छूटि गई सो सेवा छोड़ि दीनी परन्तु आज्ञा न मानी। तातें श्रीगोकुलनाथजी कहे छत्री अहंकारि करि सेवा छोड़ि दीनी वाको आसय यह जो श्री गोकुलनाथजी को अहंकार प्रिय नाहीं है। 'तामसा ना अधो-गतिः' काहेतें अहङ्कार दास भाव में विरोधी है, तातें छत्री अहंकारी कहे। ताको आसय यह और छत्री सेवक बहोत भए परन्तु अहङ्कार छत्रीपने को छोड़ि दिए। और इनकों वैष्णव नाहीं कहे "छत्री अहङ्कारी" कहे सो छत्रीपनो दासहू भए पें नाम न भयो गुरु आगें। तातें उत्तम कुल-मद बाधक दिखाए। जो एक दिन अहङ्कार सों सेवा छूटे। सदा कछुक न करावें। यह सिद्धांत दिखाए।

तातें शिक्षापत्र में लिखे हैं "असाधनः साधनो वान साधुः साधुरेवसा। शरणादेव निखिलं फलं प्राप्नोत्य संशयम्।" या मार्ग में कितन असाधन हैं, जिनसों भगवद्धर्म नाहीं बनत। कितने साधन बहोत करत हैं, सेवा स्मरण जप पाठ वामें कोई साधु जो सात्विक है कोई असाधु राजसी तामसी है। परन्तु सरन रात्रि दिन दृढ़ है प्रभु की। तिनही कों प्राप्ति निश्चय है यह बताए।

वार्ता प्रसंग २- तब छत्री अहंकारि नें सेवा छाड़ि दीनी

पाछें मथुरा आए। परन्तु बिना सेवा पूजा रह्यो न जाइ, दैवी है। तब केसौराइजी की सेवा इनारे लीनी। सोउ विपरीत किए।

भाव प्रकाश—काहे तें पहले महावन में मथुरानाथ जी की सेवा छोड़ि दिए श्रीगोवर्धनधर की सेवा किए सोतो

ठीक किए। परन्तु श्री गोवर्धननाथ को की सेवा छोड़ि फेर मर्यादा में गए। ताते बिपरीत भए सो कहत हैं।

वार्ता प्रसंग २- पाछे एक दिन गोविंददास ने केसोरायजी की सज्या निवार भराए। सो बुननवारे कों मेवा खवाइ बुनाए सो बहोत सुन्दर भई। और मथुरा के हाकिम ने खाट निवार सों बुनाइ, तब काहू ने कही केसोराय जी की सज्या भई तैसी न भई। यह सुनिकें वह हाकिम केसोराय जी के मंदिर में आयो। सो तिवारी में केसोरायजी की सज्या धरी हती। तापर चढ़ि बैठ्यो। सो काई नें गोविंददास भल्ला सों कही, जो मथुरा कौ हाकिम आइ श्रीठाकुरजी की सज्या पर बैठ्यो है। तब गोविंददास गुपति लेत आए। सो हाकिम कौ उहांई मारयो। पाछें हाकिम के मनुष्यने गोविंददास को अपराध कियो। यह बात मथुरा के बैष्णावन ने सुनी। सो गोविंददास की देह को आग्नि संस्कार कियो।

पाछें यह बात एक बैष्णाव नें श्रीआचार्यजी सों कहे महाराज ! ऐसे वैष्णाव की यह गति कैसे भई ? तब श्री-आचार्यजी महाप्रभुन ने कही, याके परलोक में तो कछु हानि नाही भई (परि) यह मेरी आज्ञा न मान्यो तातें ऐसो भयो। यह पहले जन्म में नन्दराय जी को भैसा हतो। सो याके ऊपर श्रीठाकुरजी चढ़ते। सो याने एक दिन श्रीठाकुरजी के

पूंछ की मारी, ताकौ दंड भयो । और श्रीनन्दरायजी के इहां श्रीठाकुरजी को मंन्दिर बन्यो तब याकी पीठ पर पानी माटी बहोत ढुयो है ।

भाव प्रकाशः—यह कही यह जताए जो तहांहू भार उठायो और यहांहू भार उठायो । परन्तु प्रीति सों सेवा नांही करी जैसो अधिकार पूर्व को होय तैसोई कार्य बने ।

और गोबिन्ददास सारस्वत कल्प में नन्दरायजी के पास हथियार बाँधि के रहते । सो मथुरा में कंस को कर देते, सो इनके हाथ देते । लीला में इनको नाम 'मनसुखा' गोप है । सो श्री ठाकुर जी नें जब धोबी के वस्त्र लूटे मारे तब मनसुखा कंस को पैसा टका रखतो ताको लूटिके मारग में बहोतन कों मारे । सो सब अधमरे दस पांच भए । सोऊ वैर भाव इनको चल्यो आयो ।

पाछें ये स्वेत वाराह कल्प भयो यामें श्रीनंदरायजी के घर भैंसा भए । ता बात कों पाँच हजार बरस भये । तहां श्रीठाकुरजी को पूंछ की बीनी, यह अपराध परयो । सो मथुरा को हाकिम मलेच्छ हतो । सो कंस को तौसा-खाना करतो । ताको गोविन्ददास ने मारें । जो याने नन्द-रायजी पास तें पैसा बहोत लियो है । और अब श्रीठकुरजी की सेज्या पर बेठ्यो । यह मारन लायक है । तातें मार और दस पांच अधमरे पहले किये । तिन सबन मिलके गोविन्ददास को मारे । सबको बैर छूट्यो । पाछे अब नन्द-राइजी पास फेरि गोप भये । या प्रकार कहि यह जताए

जो पिछले बेर सों बेर होइ, पिछले स्नेह सों स्नेह होइ। सो गोविन्ददास भल्ला एसे भगवदीय हते। इनकी वार्ता में यह सिद्धांत जताए जो-अहङ्कार न करनो। और अपुने हठ करि गुरु की आज्ञा उल्लङ्घन न करनो। और पुष्टिमार्गीय श्रीठाकुरजी की सेवा छोड़ि कें मर्यादा मार्गीय श्रीठाकुर जी की सेवा न करनी।

सो वे गोविन्ददास श्रीआचार्यजी महाप्रभु के एसे कृपापात्र भगवदीय हे। तातें इनकी वार्ता कहां तांई लिखिये। वैष्णव ११ (८४ मध्ये) (६६ मध्ये वैष्णव १६ भए)

શેઠ પુરૂષોત્તમદાસ

૧.ભૌતિક ઇતિહાસ+— શેઠ પુરુષોત્તમદાસ જ્ઞાતે 'ચોપડા' ક્ષત્રી હતા. તેમનો જન્મ વિ૦ સં૦ ૧૫૩૫ માં રાયપુર જીલ્લા ની અંદર આવેલ ચંપારણ્ય ની પાસેના ચતુર્ભદ્રપુર, (ચોડાનગર) માં થયો હતો. તે શ્રીમદ્‌વલ્લભાચાર્યજી થી લગભગ એક બે માસ પછી જન્મ્યા હતા. એમના પિતાનું નામ 'કૃષ્ણદાસ' હતું = કૃષ્ણદાસ દ્રવ્ય સમ્પન્ન હોવાથી શ્રેષ્ઠિ-શેઠ- કહેવાતા. તેઓ 'રતનપુર' ના રાજા જગન્નાથસિંહદેવ (વિ૦ સં૦ ૧૪૧૭) ના વંશજ રાજા ભુવનેશ્વર ના અમાત્ય હતા×.

વિ૦ સં૦ ૧૫૩૩ માં મકરસંક્રાંતિના વિશેષ પર્વ ઉપર જ્યારે કૃષ્ણદાસ ત્રિવેણી સ્નાન અર્થે પ્રયાગ ગયા હતા ત્યારે ત્યાં દક્ષિણ થી આવેલ વેલ્લનાડુ શ્રી લક્ષ્મણ દીક્ષિત નો તેમને સમાગમ થયો હતો. એ સમયે દીક્ષિત જી ના આચાર વિચાર અને વિદ્વત્તા થી કૃષ્ણદાસે પ્રભાવિત થઇ તેમની પાસેથી 'ગોપાલ-મંત્ર' ની દીક્ષા લીધી હતી. દીક્ષાનન્તર તેમણે દીક્ષિતજીપાસેથી પુત્ર પ્રાપ્તિ નો વર પણ મેળવ્યો હતો*. ત્યાર પછી લક્ષ્મણ દીક્ષિત ત્યાંથી જ્યારે કાશી ગયા ત્યારે કૃષ્ણદાસ પુનઃ ચોડા-નગર આવ્યા હતા

+વાર્તા, ભાવપ્રકાશ, યદુનાથ દિગ્વિજય, વલ્લભદિગ્વિજય આદિ ગ્રન્થો ના આધારે.

="श्रेष्ठिनः कृष्णदासस्य शिष्यीभूतस्य यज्वनः ।
पुरुषोत्तमदासेति शिशोर्नाम समर्पितम् । वल्लभदिग्विजयः ।१२४॥

×" तत्रच राज्ञोऽमात्येन कृष्णदास श्रेष्ठि..."(यदु०दिग्वि०पृ.८)

*"अथाऽत्र महत्यां पर्वयात्रायां दीक्षितं,लक्ष्मणाऽऽचार्यं विरक्त जनैः समर्चितं समागतं श्रुत्वा श्रेष्ठी कृष्णदासः सपत्नीकः पुत्रार्थी समागतस्तदर्थं ययाचे तेन देवसमाराधनं कृत्वा दत्तवरः प्रचालितः (व. दि. ५०)

વિ૦ સં૦ ૧૫૩૫ (ચૈત્રી) માં જ્યારે કાશી માં દશ-નામી સન્યાસીઓ અને મ્લેચ્છો વચ્ચે સંઘર્ષ થવાનો ભય જાગ્યો ત્યારે અન્ય જનતા ની માફક દીક્ષિતજી પણ કાશી છોડી ને સ્વદેશ જવા નિકલ્યા હતા. એ સમયે દીક્ષિતજી નાં સ્ત્રી ઇલ્લમાગારુ ગર્ભ સમ્પન્ન હતાં. તેમણે રાયપુર જીલ્લાના ચંપારણ્યમાં વ્રજ વૈશાખ વદી ૧૦ ઉપરાંત ૧૧ રવિવારની રાત્રિના પ્રથમ પ્રહરે બાલક ને જન્મ આપ્યો. આ બાલક તે જગદ્ગુરુ શ્રી મદ્વલ્લભાચાર્ય જી હતા. ત્યાર પછી દીક્ષિતજી તે બાલક ને લઇને કેટલાક દિવસ ચોડાનગર માં કૃષ્ણદાસ ને ત્યાંજ રહ્યા.

એ અરસા માં કૃષ્ણદાસ ને ત્યાં પણ એક પુત્ર નો જન્મ થયો. આ પુત્ર તેજ આપણા ચરિત્ર નાયક શેઠ પુરુષોત્તમદાસ હતા. કૃષ્ણદાસે પોતાના આ પુત્ર ને અતિ શ્રદ્ધાપૂર્વક લક્ષ્મણ દીક્ષિત ની સન્મુખમાંજ, જન્મથીજ યશ અને તેજ ને પ્રાપ્ત એવા શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી ના ચરણ માં સમર્પિત કર્યા.×

તદનન્તર કાશી ના ઉપદ્રવ શાંત થયે દીક્ષિતજી એ પુનઃ કાશી જવાના પોતાના વિચાર ને શ્રેષ્ઠિની સમક્ષ પ્રકટ કર્યો. એટલે શ્રેષ્ઠિએ રસ્તા ની આવશ્યક સર્વ તૈયારી ની સાથે ઘોડા મનુષ્ય આદિ નો પ્રબંધ કરી આપ્યો×.

×".. तस्य बालस्य प्रपत्तिः कारिता रक्षा च दत्ता ।

(य० दि० ६)

*ग्रामेशेन ततो दोला चापि समर्पिता ।

किंकराः पञ्चसंख्याका वीराश्च पथिरक्षिणः ।

(ब० दि० १२७)

દીક્ષિતજી એ કાશી માં આવી ને ત્યાંજ સ્થાયી નિવાસ કર્યો. પછી વિ૦ સં૦ ૧૫૪૦ માં જ્યારે શ્રીવલ્લભ પાંચ વર્ષ ના થયા ત્યારે લક્ષ્મણ ભટ્ટજી એ તેમને યજ્ઞોપવીત આપવાનો નિશ્ચય કર્યો. એ વાતની કૃષ્ણદાસ ને જાણ થતાં તેઓ કાશી આવ્યા અને યજ્ઞોપવિત નો સર્વ વ્યય પોતેજ કર્યો. એ પ્રકારે કૃષ્ણદાસે દીક્ષિત જી ને સેવા દ્વારા પ્રસન્ન કર્યા. પછી દીક્ષિત શ્રી લક્ષ્મણ ભટ્ટ જી ની આજ્ઞા ને પ્રાપ્ત કરી પુનઃ તેઓ 'ચોડા' ગયા.

વિ૦ સ૦ ૧૫૪૫ માં જ્યારે લક્ષ્મણભટ્ટજી ના દેહ ત્યાગ ને એક વર્ષ થયું હતું તે અરસા માં કૃષ્ણદાસ અમાત્ય પદ થી અવકાશ પ્રાપ્ત કરી કાશી આવી ને રહેવા લાગ્યા. એ સમયે તેમણે ભટ્ટજી ના કુટુંબ ની તપાસ કરી કિન્તુ ત્યાં કોઈ પ્રાપ્ત ન થયું. અહીં કૃષ્ણદાસે પોતાને રહેવાને અર્થે એક મકાન ખરીદ્યું અને તેમાં તે સહકુટુંબ રહેવા લાગ્યા. અહીં તેમણે શેઠ પુરુષોત્તમદાસ નું લગ્ન કર્યું. ત્યાર પછી લગભગ વિ. સં. ૧૫૪૮ માં કૃષ્ણદાસ નું અવસાન થયું. ત્યારથી શેઠ પુરુષોત્તમ-દાસ સ્વતંત્ર રીતે વાણિજ્ય આદિ કરવા લાગ્યા.

એ અરસા માં શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ને કનોજ ના દામોદરદાસ સંભરવાલાનો સમાગમ થયો. એમણે કૃષ્ણદાસ મેઘન દ્વારા સાંભળેલ શ્રી વલ્લભાચાર્યજી ના યશ ને શેઠ પુરુષોત્તમ-દાસ આગળ કહ્યો ત્યારથી શેઠ પુરુષોત્તમદાસ આચાર્યશ્રીના દર્શન ની પ્રતીક્ષા માં રહેતા હતા.

વિ. સં. ૧૫૫૦ ની આસ પાસ શેઠ પોતાના ઘર ને નવું બનાવવા તેનો પાયો ખોદાવ્યો. તેમાંથી તેમને અઢળક દ્રવ્ય અને એક શ્રીમદનમોહનજી નું સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયું. ઇતિહાસના

અનુસંધાન થી એમ અનુમાન થઈ શકે છે કે તે દ્રવ્ય પૂર્વેના કોઈ દટાઈ ગયેલા દશનામી સન્યાસી ના મઠ નું હોવું જોઇએ= ઘર નવું થયા પછી શેઠ તેમાં રહી શ્રીમદનમોહનજી ની શ્રદ્ધા પૂર્વક પૂજા કરવા લાગ્યા.

એવામાં વિ. સં. ૧૫૫૨ માં શ્રી મદ્દવલ્લભાચાર્યજી પોતાની પ્રથમ પૃથ્વી પરિક્રમા × સમાપ્ત કરતાં કાશી પધાર્યા. આપનું પધારવું સાંભળી શેઠ મણિ કર્ણિકા ઘાટ ઉપર આવી આપનાં દર્શન કર્યાં. અને કૃષ્ણદાસ મેઘન દ્વારા પરિચય પ્રાપ્ત કરી તે આપના સેવક થયા. પછી આપને પોતાના ઘરમાં પધારવા વિનંતી કરી.

એ સમયે શેઠ ને ત્યાં રૂક્ષ્મણી અને ગોપાલદાસ ના જન્મ થઈ ચૂકયા હતા. એથી શેઠ શ્રીમદ્દવલ્લભાચાર્યજી ને પોતાને ત્યાં પધરાવી તે સર્વે ને સેવક કરાવ્યા. તેમજ શ્રીમદન-મોહનજી ને પુષ્ટ કરાવ્યા. ત્યારથી શેઠજી આપના અનન્યગામી સેવક બન્યા.

શેઠની વૈષ્ણવતા જોઈ ને શ્રીમદ્દવલ્લભાચાર્યજી એ તેમને જીવોને અષ્ટાક્ષરમંત્ર શ્રવણ કરાવવાની પણ આજ્ઞા આપી. સાથે સાથે તેમની પ્રીતિ ને વશ થઈ આચાર્યશ્રીએ તેમના ઘરનેજ કાશી ના નિવાસ તરીકે પસન્દ કર્યું. ત્યારથી શેઠ ના ઘરમાં આજ પર્યંત આપની બેઠક વિદ્યમાન છે.

આચાર્ય શ્રી એ શેઠ ને ત્યાંજ 'પત્રાવલંબન' ગ્રન્થ ની રચના કરી હતી. 'નંદમહોત્સવ' ના પ્રકાર ને પણ આપે સહુ થી પહેલા અહીંજ પ્રકટ કર્યો હતો. શેઠ આપની યાવ-જજીવન તન મન અને ધન થી સંપૂર્ણ શ્રદ્ધા સહિત નિષ્કામ ભક્તિ કરી.

= જુઓ શ્રી વિઠ્ઠલેશ ચરિત્ર પત્ર ની ફુટ નોટ × જુઓ વાર્તા

શેઠ માં વૈષ્ણવતા ના આદર્શ રૂપ ભક્તિભાવ ની સાથે સંતો ને ઉપયુક્ત એવાં ત્યાગ અને વૈરાગ્ય પણ દૃઢ હતાં. તેમણે મણિ નો તિરસ્કાર કરી સન્યાસી ઓથી પણ ન થઈ શકે એવા ભગવદાશ્રય વાલા અપૂર્વ ત્યાગનો પરિચય આપ્યો હતો એજ રીતે રાજાની સન્મુખ ગૌ સેવા અને સાદા જીવન ને નિઃસંકોચ રુપમાં પ્રકટ કરી જ્ઞાન વૈરાગ્ય ના આદર્શ ને પણ પ્રકટ કર્યો હતો. તેમનો સમગ્ર વ્યવહાર ભક્તિભાવ થી સમ્પન્ન હતો એ પણ તેમની વાર્તા થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે.

શેઠનો અન્તિમ સમય યદ્યપિ પ્રાપ્ત થતો નથી તથાપિ વાર્તા માં તેમની વૃદ્ધાવસ્થા નો ઉલ્લેખ હોઈ તેમણે લગભગ ૬૦—૭૦ વર્ષ ની ઉમર ને તો અવશ્ય પ્રાપ્ત કરીજ હશે એમ અનુમાન થઈ શકે છે. અને તેના આધારે તેમની ભૂતલ સ્થિતિ લગભગ વિ૦ સં૦ ૧૬૦૦ પર્યંત રહેલી હોવી જોઇએ.

શેઠ નાં પુત્રી રુક્ષ્મણી અને ગોપાલદાસ નો કોઈ વિશેષ ઇતિહાસ પ્રાપ્ત થતો નથી તથાપિ વાર્તા ના આધારે રુક્ષ્મણી નો જન્મ વિ૦ સં૦ ૧૫૪૯ લગભગ અને ગોપાલદાસ નો જન્મ વિ૦ સં૦ ૧૫૫૧ ની આસ પાસ થયો હોવો જોઇએ. કેમકે શ્રીમદ્‌વલ્લભાચાર્યજી પ્રથમ પરિક્રમા કરી વિ૦ સં૦ ૧૫૫૨ માં કાશી પધારેલા નિશ્ચિત છે.* અને તેજ સમયે શેઠ પુરૂષોત્તમ દાસે ઉભય ને નામ નિવેદન પ્રાપ્ત કરાવ્યું હતું. અતઃ પુરૂષોત્તમદાસ ની તે સમય ની વય ૧૮ વર્ષ ની હોઈ ઉભય સંતતી ના જન્મ નો સમય ઉપર પ્રમાણેજ નિર્ધારિત થઈ શકે છે. શેઠ નું લગ્ન તેરવર્ષ ની વયે થયું હોય તો ૧૮ વર્ષ માં બે સંતતિ થવી સામાન્ય રીતે સ્વીકાર થઈ શકે તેમ છે અસ્તુ.

રુક્ષ્મણી અને ગોપાલદાસ ની ભૂતલ સ્થિતિ ક્યાં સુધિ રહી તેનો નિશ્ચય થઈ શકતો નથી. તોપણ " गङ्गा ने

रुक्मिणि पाई" એ શ્રી ગુસાંઈજી ના વાકયથી રૂક્મણી નો અંતિમ સમય શ્રી ગુસાંઈજી ના તિરોધાન પહેલાં અર્થાત વિ૦ સં૦ ૧૬૪૨ પહેલા જ થયેલો નિશ્ચિત થાય છે. ગોપાલ દાસ તો વિરહ માંજ રહેતા હોવાથી તેમની ભૂતલ સ્થિતિનો સમય બહુ ઓછો હોવો જોઇએ.

શેઠ પુરૂષોત્તમદાસ ની ઉભય સંતતિ ભગવત્સેવા અને સ્મરણ નિષ્ઠ હતી. રુક્મણી ને માટે તો શ્રીગુસાંઈજી એ "इनसों श्रीठाकुरजी उरिन कबहू न होइगें"। એ પ્રમાણે આજ્ઞા કરી હતી એથી તેમની સેવા નિષ્ઠતા નો પરિચય મળી રહે છે. તેનું કેટલુંક સેવા વિષયક વિશેષ વર્ણન "ભાવસિંધુ" થી પણ પ્રાપ્ત થઈ રહે છે. ગોપાલદાસ ભક્તની સાથે કવિ પણ હતા. તેમણે શ્રીમદાચાર્ય ચરણ અને શ્રી ઠાકુરજી નાં કેટલાંક પદ પણ ગાયાં છે. જેનો કાવ્ય પરિચય "પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત કવિ" માં હવે પછી આપવામાં આવશે.

૨. વાર્તા સ્વારસ્ય—પ્રથમ ભાગ "વાર્તા - રહસ્ય' પૃષ્ઠ ૬ ઉપર આપેલા દ્વાદશાંગ રૂપ વાર્તા-કોષ્ઠક ને અનુસાર શેઠ પુરૂષોત્તમદાસ ની વાર્તા શ્રીમદાચાર્યચરણ ના ઉદર સ્વરૂપ પુષ્ટિમુક્તિ (મોક્ષ) રૂપા છે.

શ્રીમદાચાર્યચરણ શ્રીભાગવતના મુક્તિ- લક્ષણ માં "निष्प्रपञ्चानां स्वरूप- लाभो मुक्तिः" એ પ્રમાણે ભક્તો ના "સ્વરૂપલાભ" ને મુક્તિ કહેલી છે. આ સ્વરૂપલાભ તે ભક્તોની પોતાના આધિદૈવિક મૂલ રૂપમાં સ્થિતિ થવી તે છે. આ સ્થિતિ બે પ્રકારે થાય છે. એટલે તે મુક્તિ દ્વિવિધ ધર્મરૂપ પણ છે.

"સ્વરૂપલાભ" રૂપ મુક્તિ નું એક ધર્મરૂપ જીવ કૃતિ સાધ્ય 'સાયુજ્ય મુક્તિ' છે. એમાં માર્ગનિષ્ઠાએ, કર્મેદ્રી, જીવ

નો કૃષ્ણ સંબંધ દ્વારા પરમાનંદમાં પ્રવેશ થાય છે.* એનું બીજું ધર્મ રૂપ ભગવત્કૃતિ સાધ્ય 'સાદ્યો મુક્તિ' છે. એમાં સાધન ક્રમ રહિત જીવ માં પ્રમેય બળે શ્રી કૃષ્ણ અત્યંત કૃપા યુક્ત થઈ પ્રવેશ કરે છે.= આમ સ્વરૂપ લાભ વાળી મુક્તિ નાં બે ધર્મ રૂપો પણ પ્રાપ્ત છે.

શેઠ પુરૂષોત્તમદાસની વાર્તા માં મુકિત નું 'સ્વરૂપલાભ' વાળું લક્ષણ આ પ્રકારે કહેવામાં આવ્યું છે—

"और सेठि पुरुषोत्तमदास एक दिन मन्दिर में बैठे हे। मन्दिर– वस्त्र करंत हते। सो दूरि तें गोपालदास देखि के मन में विचार कियो, जो अब सेठिजी वृद्ध भए हैं। तातें अब मैं सेवा में तत्पर होऊं। तब गोपालदास न्हाइ आए। तब सेठिने गोपालदास के मन की बात जानि कै बुलाए। बेटा! आगे आउ तब गोपालदास निकट आइकें देखे तो बीस-पचीस वर्ष के सेठि हैं। तब सेठि पुरुषोत्तमदास ने गोपालदास सों कही जो, भगवदीय सदा तरुन हैं। परन्तु जो अवस्था होइ ताकों मान दियो चाहिए। तातें आजु पाछें एसी मन में मति लाइयो।"

આ પ્રસંગ માં શેઠ પુરુષોત્તમદાસે પોતાના મૂળ આધિ-દૈવિક ભગવદીય રૂપ ને સ્પષ્ટ કર્યું છે. એ થી તેમનો 'સ્વરૂપ-લાભ' પ્રકટ થઈ રહે છે. તેમણે પોતાના વિશેષ સામર્થ્ય દ્વારા ગોપાલદાસ ના હૃદય ની વાત ને જાણી પોતાના સ્વરૂપલાભ રૂપ ભગવદીયત્વ નો તેને પણ અનુભવ કરાવ્યો છે.

---

* તથા જુઓ શ્રી હરિરાયજી કૃત "મુક્તિ દ્વૈવિધ્ય નિરૂપણ" ગ્રન્થ.

ભગવદીયો ની સર્વજ્ઞતા સ્વતઃ સિદ્ધ હોય છે. તે ન કેવલ જીવોનાજ હૃદય ની વાત ને જાણી શકે છે કિન્તુ ભગવાનના હૃદયની પણ વાત ને સહજ માં જાણી લે છે. એથી અહીં ગોપાલદાસ ના હૃદય ની વાત ને શેઠ પુરુષોત્તમદાસે જાણી તે કોઈ આશ્ચર્ય જનક ન થી. કૃષ્ણદાસ મેઘન, દામોદર દાસ સંભરવાલા આદિ ભકતો એ શ્રીમદાચાર્યચરણના હૃદય ની વાત ને પણ જાણી લીધી છે એ પૂર્વે વાર્તા થી જ્ઞાત છે. "पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः" એ આચાર્ય વાકય જ્યાં પુષ્ટિ પુષ્ટિ ભકતો માં "સર્વજ્ઞતા" ના લક્ષણ ને કથે છે ત્યાં શેઠ પુરૂશોત્તમદાસાદિ નિર્ગુણ શુદ્ધ પુષ્ટિભકતો માં સર્વજ્ઞતા હોય તેમાંતો આશ્ચર્યજ શું ?

પ્રશ્ન—અહીં એક પ્રશ્ન એ થઈ શકે છે કે શ્રીમદ્ભાગવતના મુકિતલક્ષણનું તાત્પર્ય તો કૃત્રિમ ભૌતિક રુપો ને છોડી ને ભકત ની મૂળ રૂપમાં સ્થિતિ થવી એમ છે. કિન્તુ અહીં શેઠ નું તે ભૌતિક રુપ છુટ્યું નથી. તેથી મુકિત લક્ષણ અત્રે ફલિત થતું નથી

સમાધાન—ઉકત શંકા ઠીક નથી. કેમકે શુદ્ધ પુષ્ટિ ભકતો આ દેહમાંજ પોતાના મૂળ અલૌકિક રુપની પ્રાપ્તિ કરી મુકત દશા ને પ્રાપ્ત થયેલા હોય છે. યદિ જો તેઓ આ દેહ ને છોડી ને સ્વરૂપલાભ રુપ મુકિત ને પ્રાપ્ત થાય તો અન્ય મર્યાદા ભકતો કરતાં તેમની વિલક્ષણતા સિદ્ધ થઈ શકે નહીં. પરન્તુ "સર્વત્રોત્કર્ષના કથન થી પુષ્ટિ નો નિશ્ચય થાય છે' એ શ્રીમદાચાર્ય ચરણ ના વાકય ને અનુસાર આ ભકતો' માં

ઉત્કર્ષતા થી પુષ્ટિ નું જ્ઞાન થવાને માટે તેમનામાં મર્યાદા થી વિલક્ષણતા રહેવી આવશ્યક છે. અત: અહિં શેઠ ના ભૌતિક દેહમાંજ અલૌકિક રુપ ના 'સ્વરૂપલાભ' રુપ મુક્તિ નું દર્શન કરાવવા માં આવ્યું છે. પુષ્ટિ ભક્તોના આ ભૌતિક દેહમાંજ અલૌકિકતા પ્રાપ્ત થઈ રહે છે તેનો પ્રકાર શ્રીહરિરાયજી એ "સ્વમાર્ગીય ભાવના નિરૂપણ" ગ્રન્થ માં આ રીતે વર્ણવ્યો છે-

"પુષ્ટિ ભક્તો માં વિયોગરસની સ્થિતિ હોય છે. તે સ્વતાપવડે ભૌતિક દેહ ને તપાવી તેમાં રહેલા મલાદિક ને દૂર કરે છે. એ થી અગ્નિ ના સંબંધ થી જેમ કાષ્ઠ તેજોમય બને છે તેમ તે દેહ તેજોમય બને છે. આ વિયોગાગ્નિ સ્વરુપાત્મક હોવાથી દેહ નો નાશ કરતો નથી કિન્તુ દેહ ને મૂર્તિવત્ અધિષ્ઠાન રૂપ કરી તેમાં સમાન આકાર થી આત્મા રુપે પ્રવેશે છે. એથી તે તદ્રૂપ થઈ અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થાય છે.*

પ્રશ્ન—અહીં એક અન્ય પ્રશ્ન પણ ઉપસ્થિત થઈ રહે છે. તે એકે જ્યારે આ દેહ માં અલૌકિકતા પ્રાપ્ત થાય છે. તો તેનો ત્યાગ કેવીરીતે અને કેમ સંભવે ?

સમાધાન—પુષ્ટિ ભક્તો ના દેહ નો ત્યાગ ભગવદ્ ઇચ્છા ઉપરજ અવલંબિત છે. જે ભક્તો માટે ભગવદ્ ઇચ્છા દેહત્યાગ

---

* "प्रकारस्तु पूर्वं देहान् स्वतापेन शुद्धान् विधाय तत्स्थितं मलादि दूरीकृत्य वह्नि संबंधेन काष्ठमिव तेजोमयं विधाय, यथा वियोगाग्निना नाशो न भवति तदात्मकत्वात्, मूर्तिवदधिष्ठानत्वेन तन्निर्माय तत्र भावात्मा बहिःप्रकटसमाकारः सर्वलीलाविशिष्टः प्रविशतीति।"

—શ્રીહરિરાયજી

ની હોય છે તેજ દેહ ત્યાગ કરે છે. જેને અર્થે તે નથી હોતી તે ભકત સદેહે પણ લીલા માં જઈ શકે છે. સદેહે લીલા માં ગયા નાં દૃષ્ટાંતો ગોવિંદસ્વામી પ્રભૃતિ નાં પ્રાપ્ત છે. જે ભકતો ભગવાન ની ઇચ્છા ને જાણી ને દેહ ત્યાગ કરે છે તેઓ આ કાલ ને ભગવાન ની ઇચ્છા શકિત રૂપ સમજીનેજ તેનો કેવળ આદર માત્ર કરે છે. અન્યથા તે અસાધારણ અવસ્થા માં કાલ નું અતિક્રમણ પણ કરી શકવાના સામર્થ્ય વાળા હોય છેજ 'તેને કાલ કર્મનવ બાધેરે યમને શિર ધનુષ નસાંધેરે' એ વલ્લભાખ્યાનનાકથનની સાથે 'पुष्टिः कालाद्विरोधिका' વાળું- આચાર્ય વાકય પણ અત્રે સ્મરણીય છે. અત્રે કાલ ને આઠ વાર પાછા ફેરનાર ઠાકરી નું સ્મરણ પણ આવશ્યક છે.શેઠ પુરુષોત્તમદાસે પણ "परन्तु जो अवस्था होइ ताको मान देनो चाहिये।" આ શબ્દોમાં ઉકત અભિપ્રાય નેજ સ્પષ્ટ કર્યો છે.

બીજું પુષ્ટિ ભકતો ના આ દેહ માં અલૌકિકત્વ પ્રાપ્ત થયે તેનો ત્યાગ જો કે સંભવતો ન થી તો પણ પ્રભુની ઇચ્છા ને જાણી ને પુષ્ટિ ભકતો, પ્રભુની સમાન પોતાના કર્તુંમ, અકર્તુંમ, અન્યથા કર્તુંમ સર્વ સામર્થ્ય રૂપ થી તેનો ત્યાગ કરી શકે છે. ત્યાગ ની સમયે તે તેમાં રહેલા અલૌકિકત્વ નું સંવરણ કરી તેને પુનઃ કેવળ પંચભૌતિક કરી દે છે. એ તેમનું કર્તુંમ્ અકર્તુંમ્ અને અન્યથા કર્તુંમ્ સામર્થ્ય છે. અલૌકિકતા ને પ્રાપ્ત થયા પછી પણ વ્રજ ભકતો એ દેહ ને છોડયાનું શ્રીસુબોધિની પ્રભૃતિમાં પ્રાપ્ત છે.* અતઃ ભગવાનની સમાન ભગવદ્ ભકતો માં પણ વિરુદ્ધ ધર્માશ્રય વાળું સામર્થ્ય રહેલું દેખાઈ આવે છે. એથીજ શ્રીમદાચાર્યચરણે ભગવાન અને પુષ્ટિભકતો માં સંપૂર્ણ અભેદ બતાવ્યો છે. કેવલ લીલા સિદ્ધયર્થેજ તેમાં ભિન્નતા રહેલી દેખાય છે.

---

*જુઓ ભ્રમરગીત અધ્યાય ૪૩ શ્લોક ૫ ની શ્રીસુબોધિની.

स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ।
तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि ।" (पु. प्र. म.)

આમ શેઠ પુરુષોત્તમદાસની વાર્તા માં એકાદશસ્કંધીય મુક્તિ લક્ષણ થી પુષ્ટિમુક્તિ નું મૂળ-ધર્મી રુપ કહેવામાં આવ્યું છે. આ પ્રકારની મુક્તિજ ધર્મી સ્વરૂપ શ્રીમદાચાર્યચરણના શિર રૂપ છે.

ઉક્ત મુક્તિ ના દ્વિવિધ ધર્મ રુપ 'સાયુજ્ય' અને 'સદ્યો' મુક્તિ શેઠ ની પુત્રી રુક્મણિ અને શેઠ ના પુત્ર ગોપાલદાસની વાર્તાઓ માં કહેવાયેલ છે. પૂર્વોક્ત 'સાયુજ્ય મુક્તિ' રૂક્મણિ ની વાર્તા માં આ પ્રકારે કહેવાઈ છે—

"सो रुक्मनि ने सेठि पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो- तुम कहो तो कातिक स्नान करूं। तब सेठि ने कही, करो । .. सो रुक्मनि पहररात्रि पिछली सों उठि नित्य नेग तें अधिक सामग्री करै। सो मङ्गला तें राजभोग पर्यंत आरोगावै । पाछे उत्थापन तें सेन पर्यंत आरोगावै। एसे करत कितनेक दिन बीते तब सेठि ने रुक्मनि सों पूछे, जो कातिक न्हात तोकों कबहू देख्यो नाही। तू गंगाजी कौन समय न्हात है । तब रुक्मनि कही, मेरे कार्तिक न्हाइवे को कहा काम है ? मैं तौ याही भांति न्हात हों।"

આ ઉદ્ધરણ માં સાયુજ્યમુક્તિ નાં "માર્ગનિષ્ઠા" "સાધન ક્રમ" "કૃષ્ણ સંબંધ" અને "પરમાનન્દ માં પ્રવેશ" એમ ચાર તત્ત્વો પૈકીના પ્રથમ નાં બે તત્ત્વો સ્પષ્ટ થયેલાં છે. કાર્તિકાદિ સ્નાનના નિમિત્તે રુક્મણિ એ ભગવાન ને જે વિવિધ અને વિશેષ સામગ્રીઓ આરોગાવી તે તેની માર્ગ ઉપર ની

નિષ્ઠા ની સૂચક છે. કેમકે તેણે કાર્તિકાદિ સ્નાન ના ફલ ની જરા પણ અપેક્ષા રાખ્યા વિના એક માત્ર શ્રીહરિનેજ સમ્પ્રદાયના સિદ્ધાંત ને અનુસાર નિષ્કામ ભાવે સામગ્રી અરોગાવી તે માર્ગ ની નિષ્ઠા નેજ સ્પષ્ટ કરે છે. એજ પ્રકારે તેણે શ્રીહરિ ની મંગલા થી સેન પર્યંત ના ક્રમ ને અનુસાર તનુવિત્તજા સેવા કરી સમ્પ્રદાયના સાધન ને પણ સ્પષ્ટ કર્યું છે. એનો ઉલ્લેખ પણ ઉકત ઉદ્ધરણ માં મળી આવે છે. આમ રૂક્મણી મા "સાયુજ્ય મુકિત" ના પ્રારંભનાં બે તત્ત્વો ઉક્ત કથન થી સ્પષ્ટ થયા છે. તેનું ત્રીજું તત્ત્વ જે "કૃષ્ણ સંબંધ" તે તેના ચોવિસ વર્ષે શ્રીગુસાંઇજી ના દર્શન અર્થે ગંગા સ્નાન કરવા આવ્યા ના વાર્તાના પૂર્વ ઉલ્લેખ થી સ્પષ્ટ થઈ જાય છે. તેને શ્રીકૃષ્ણની સેવા માં એવી તો આસકિત હતી કે તદતિરિકત અન્ય કોઈ પણ પ્રકાર નો સંબંધજ પ્રાપ્ત ન હતો. એથી એ સેવા દ્વારા કૃષ્ણ નો સંબંધ તેને સારી રીતે સિદ્ધ થયો હતો એ સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. એની વિશેષ પુષ્ટિ શ્રીગુસાંઇજી ના "इनसों श्री ठाकुरजी उरिन कबहू न होइंगे ।" એ કથન થી થઈ રહે છે. આ વાકય માં પ્રાપ્ત "उरीन" શબ્દ રૂક્મણી અને શ્રીઠાકુરજીના સાક્ષાત સંબંધ નો પણ સૂચક છે. જેમ વ્રજભકતો ના સાક્ષાત્ પ્રેમ થીજ શ્રીકૃષ્ણ તેમના સદા ને માટે ઋણી થયા છે તેમ રૂક્મણી ના પણ સાક્ષાત્ પ્રેમથીજ શ્રીઠાકુરજી તેજ પ્રકારે ઋણી થયા છે. એથી ઉભય વચ્ચે સાક્ષાત્ સંબંધ રહેલો જણાઈ આવે છે. એતદર્થ શ્રી હરિરાયજી એ પણ ત્યાં ના "ભાવપ્રકાશ" માં તેજ ભકતો નુંજ દૃષ્ટાંત આપ્યું છે. સાયુજ્ય મુકિત નું ચોથું તત્ત્વ "પરમાનંદમાં પ્રવેશ" છે. તે "गंगा ने रुक्मनि पाई" એ શ્રી ગુસાંઇજી ના વાકય થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. અહિ શ્રીગુસાંઇજી એ ભગવત્ચરણોદક સ્વરૂપીની ગંગા થી પણ રૂક્મણિ નો વિશેષ ઉત્કર્ષ પ્રકટ કર્યો છે.

ભગવત્ચરણોદક થી વિશેષ ઉત્કર્ષ ભગવાન સિવાય અન્ય નો સંભવે નહિં. અતએવ રુકમણી નો પરમાનંદ સ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણ માં પ્રવેશ નિશ્ચિત થયેલો છે. એથીજ ગંગાની અપેક્ષા રુક્ષ્મણી નો ઉત્કર્ષ વિશેષ કહેવાયો છે. આમ "સાયુજ્ય મુકિત" નાં ચારે તત્ત્વો રુક્ષ્મણીની વાર્તા માં સ્પષ્ટ હોઈ આ વાર્તા તે મુકિત ને સ્પષ્ટ કરનારી છે.

ગોપાલદાસની વાર્તા માં "સદ્યોમુકિત" નું નિરૂપણ છે. એમાં પૂર્વ કથન ને અનુસાર સાધન ક્રમ નો અભાવ હોય છે. તેમાં કેવળ પ્રમેય બલે શ્રીકૃષ્ણ અત્યંત કૃપાયુકત થઈ જીવમાં પ્રવેશે છે. આ પ્રકારની 'મુકિત' ગોપાલદાસ ની વાર્તા માં આ પ્રકારે પ્રાપ્ત થઈ રહે છે—

"और गोपालदास कों रात्रि कों नींद आवती । फेरि चौंकि के बिरह में पुकारते, श्रीमदनमोहन जी ! तब मन्दिर सों श्रीठाकुर जी कहते क्यों पुकारत हो ? मैं तो तेरे निकट हों ।......या प्रकार विरह में गोपालदास मन्दिर कौ ताला लगाइ, चोक कौ ताला लगाइ, चौखटि पर माथो धरि एक वस्त्र बिछाइ विरह में परे रहतें ।"

આ ઉદ્ધરણ માં ગોપાલદાસના સાધન ક્રમ નો અભાવ સ્પષ્ટ છે. તેમને સાધનની અપેક્ષા રાખ્યા વિના શ્રી કૃષ્ણે અત્યંત કૃપાવંત થઈ પ્રમેય બળે વિરહ નું દાન કર્યું હતું. અને તે વિરહ દ્વારા શ્રીકૃષ્ણેજ તેમનામાં પ્રવેશ કર્યો હતો. એથીજ જ્યારે જ્યારે ગોપાલદાસ વિરહ માં વિકલ થઈ પ્રભુને પુકારતા ત્યારે ત્યારે પ્રભુ અવાજ દઈ તેમનું સમાધાન કરતા. વાર્તા માં આવેલું "मोसो तेरो बिरह सह्यो नहिं जात" એ પ્રભુનું

વાક્ય અત્યંત કૃપા નું સૂચક છે. વિરહ નું દાન પ્રમેય બળ વિના પ્રાપ્ત થતું ન થી. અતઃ પ્રમેય બલ પણ અત્રે સ્પષ્ટજ છે. અને શ્રીમદનમોહનજી સમય સમય ઉપર અનોસરમાં પણ તેમનું સમાધાન કરતા તે ગોપાલદાસ માં શ્રીકૃષ્ણ ના પ્રવેશ નું સૂચક છે. ગોપાલદાસ ના હૃદય માં પ્રભુએ સારી રીતે પ્રવેશ કર્યો હતો ત્યારેજ શ્રીઠાકુરજી તેમનું હરેક સમયે સમાધાન કરતા. આમ આ વાર્તા માં "સદ્યો મુક્તિ" નું સ્પષ્ટ નિરૂપણ છે. આ ત્રણે વાર્તાઓ ને સમજવા અર્થે અહીં એક કોષ્ટક આપવામાં આવે છે.—
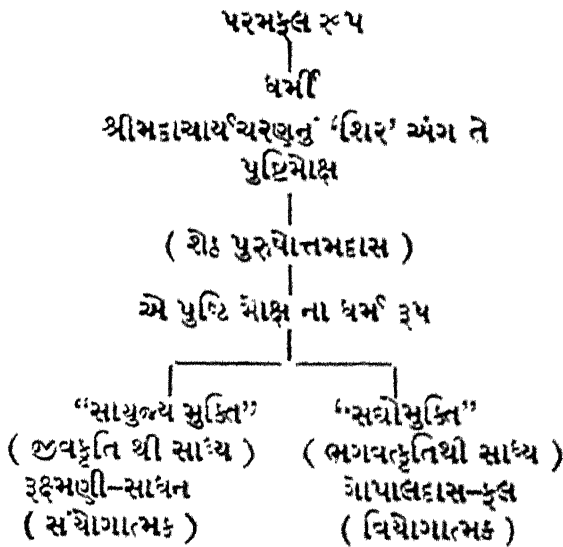
આ પ્રકારે શ્રીમદાચાર્યચરણે પુરૂષોત્તમદાસ માં પુષ્ટિ મુક્તિ ને સ્થાપી તેમની દ્વારા મર્યાદા મુક્તિ ક્ષેત્ર કાશી માં તેને પ્રકટ કરી. એથી પુષ્ટિ ની ઉત્કર્ષતાએ આપનો યશ કાશી માં પણ ફેલાયો અને તે દ્વારા આપનું મસ્તક શિવપુરી કાશી

માં પણ સદા ઉન્નતજ રહયું. કાશી માં આપે કરેલા ધ્વજા-રોહણ નો સંકેત પણ આનુંજ સૂચનકર્તા છે.ત્યારથીજ કાશીમાં આજ પર્યન્ત પુષ્ટિ ની વિજય પતાકા ફરહરાય છે. અને ત્યાં આજ પણ માયાવાદી શૈવો માં યે આંશિક ભક્તિ જોવામાં આવે છે. એ પુષ્ટિ ભક્તિ નો પ્રકટ વિજય છે.

અન્યત્વે, આ ત્રિવિધ ધર્મ ધર્મી મુક્તિ રૂપ ત્રણે ભગવદીયોનાં ફલ રૂપા માનસી સેવા ના મધ્ય ફલ રૂપ ત્રણ રૂપો આ પ્રકારે છે—

"सेवायां फलत्रयं; अलौकिक सामर्थ्यं, सायुज्यं, सेवोपयोगी देहो वा वैकुण्ठादिषु ।" એ આચાર્ય કથન ને અનુસાર "અલૌકિક સામર્થ્ય" રૂપ પ્રથમ ફલ શેઠ પુરુષોત્તમદાસ માં સિદ્ધ થયેલ છે. આ "અલૌકિક સામર્થ્ય" તે સર્વાભોગ્ય સુધા ધર્મી રૂપ આનન્દ છે. દ્વિતીય 'સાયુજ્ય' ફલ રૂકિમણી માં સિદ્ધ થયેલ છે. આ 'સાયુજ્ય' તે ભગવદ્ભોગ્યા સુધા ધર્મભૂત આનન્દ પ્રભુ અપ્રધાનીભૂય ભક્ત પરવશ છે. તૃતીય "સેવોપયોગી દેહ વા વૈકુણ્ઠાદિષુ" ફલ ગોપાલદાસ માં સિદ્ધ થયેલ છે. આ ફલ તે દેવભોગ્યા સુધા ધર્મભૂત આનન્દ પ્રભુ પ્રધાનીભૂત સ્વવશ છે. જેમ સ્વર્ગ ફલ ની મધ્યે અમૃત પાનાદિ છે.તેમ માનસી ફલ રુપ મધ્યે આ ત્રણ ફલ છે.*

૩. પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય—શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ની વાર્તા પૂર્વોક્ત પ્રકારે પુષ્ટિ મુક્તિ મોક્ષ રુપ છે. આ મોક્ષ શુદ્ધ પુષ્ટિ અવસ્થા રુપ હોઈ તે પરમફલ રુપ ધર્મી વિપ્રયો-

*श्री द्वारकेशजी की भाव भावना पृष्ठ २०

ગાત્મક શ્રીમદાચાર્યચરણના સ્મરણ ભજન સ્વરૂપા છે.* આ સ્મરણ ભજન ની પૂર્ણતા જ્ઞાપનાર્થ આ વાર્તા માં ષડૈશ્વર્ય યુક્ત ધર્મી ની સાથે અન્ય ધર્માદિ પુષ્ટિના ત્રણ પુરુષાર્થો નું પણ નિરૂપણ કરાયેલ છે. અત્રે ષડૈશ્વર્યો દ્વારા જેમ શ્રીમદાચાર્ય ચરણના સ્મરણ ને સિદ્ધ કરેલ છે. તેમ ધર્મી યુક્ત ત્રણ પુરુષાર્થો દ્વારા આપના ભજન ને સ્પષ્ટ કરેલ છે. આ ધર્મી સ્વરૂપલાભ વાળી મુક્તિ નું તાદાત્મ્યભાવવાળું દ્વિતીય અભિન્ન રૂપ તે પુષ્ટિ (સદ્યો) મુક્તિજ છે. આમ ષડૈશ્વર્ય સહિત ધર્મી-મોક્ષ-ની સાથે અન્ય ત્રણ પુરુષાર્થો ના નિરૂપણ થી દસ તત્ત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. એથી આ વાર્તા માં દસ પ્રસંગોજ કહેવાયલા છે. તે દસે નું રહસ્ય આ પ્રકારે છે.

પ્રસંગ—૧. આ પ્રસંગ માં તામસ મૂઢ જીવોના ઈશ્વર રૂપ મહાદેવ ની પ્રસાદ-યાચના દ્વારા શેઠ માં રહેલ શ્રીમદાચાર્ય ચરણના 'ઐશ્વર્ય' ધર્મ નું સ્મરણ કરાયેલ છે. આ 'ઐશ્વર્ય' તે પુષ્ટિ ના ઉત્કર્ષ રૂપ છે.

પ્રસંગ—૨. આ પ્રસંગ માં મહાદેવ અને કાલ ભૈરવ જેવા સમર્થ દેવો દ્વારા ભય પૂર્વક શેઠ ના ઘરની કરાયલી રખવાલી તે શેઠ માં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણ ના 'વીર્ય' ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ—૩. સ્માર્ત્ત ધર્મ જેને મહાદેવના સાક્ષાત્કાર રૂપ થી ફલિત થયેલો છે. એવા બ્રાહ્મણનો પણ શેઠ 'પુષ્ટિમાર્ગ'

---

* "अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः । स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ।" એ આચાર્ય વાક્ય માં ઉક્ત પ્રકારના પુષ્ટિ મોક્ષનું નિરૂપણ છે. એનું વિસ્તૃત વિવેચન અમારા તરફ થી પ્રસિદ્ધ થયેલ 'પુષ્ટિ-માર્ગ' માં આવેલ છે જીજ્ઞાસુ એત્યા જોવું

માં કરાવેલ પ્રવેશ તે તેમનામાં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણના 'યશ' ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ—૫. આ પ્રસંગમાં મંદારમધુસૂદન ઠાકુર નું ચિંતિત દ્રવ્ય આપનાર અમૂલ્ય મણી દ્વારા લલચાવવું છતાં શેઠ નું આશ્રય સ્વરૂપ શ્રીહરિમાંજ એક માત્ર પરમ વિશ્વાસ થી તેના તાદૃશ રૂપ (આશ્રય) ને પ્રાપ્ત થવું તે તેમના માં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણના 'શ્રી' ધર્મ ને સ્મરણ કરાવે છે. "श्रियो हि परमाकाष्ठा सत्रकास्ताद्दशा यदि" એ વાક્ય અત્રે સ્મરણીય છે.

પ્રસંગ—૭. રાજા ની સન્મુખ પણ શેઠ દ્વારા થયેલ રાજસી સ્વભાવ નું પરિવર્તન અર્થાત્ રાજ વિવેક ને અનુસાર કરવાં જોઈતાં કાર્યો નું સહજ વિસર્જન તે તેમના માં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણનાં 'જ્ઞાન' ધર્મ ને સ્મરણ કરાવનાર છે. જ્ઞાન-દૃઢ થયા વિના સ્વભાવનું પરિવર્તન શકય નથી 'भग्न-मानयः એ વાકય અત્રે સ્મરણીય છે.

પ્રસંગ ૧૦—ભગવત્પ્રીત્યર્થ મામા આદિના આગ્રહ રૂપ લોક સંબંધ નો તેમજ ગયા યાત્રા રૂપ વેદ સંબંધ નો અહિ કહેવાયલો સહજ ત્યાગ તે શેઠ માં સ્થિત આચાર્યશ્રી ના "વૈરાગ્ય" ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ ૪—આ પ્રસંગ માં ધર્મી નું નિરૂપણ છે. આ ધર્મી તે પુષ્ટિ મોક્ષ રૂપ ચતુર્થ પુરુષાર્થજ છે. અહિ કહેલો શેઠ નો 'સ્વરૂપલાભ તે પૂર્વ કથન ને અનુસાર પુષ્ટિ મુક્તિ રૂપ છે.

આ ધર્મ રૂપ હોવાથી તેમાં અન્તર્ગત પણાએ ષડૈશ્વર્ય ની પણ આ પ્રકારે સ્થિતિ કહેલી છે—

૧. ઐશ્વર્ય—ગોપાલદાસ માં થયેલ લોક બુદ્ધિ રૂપ અજ્ઞાન ને દૂર કરવું તે ઐશ્વર્ય. ૨. વીર્ય— પોતાના અલૌકિક રૂપ ને પ્રકટ કરવું તે વીર્ય. ૩. યશ—ગોપાલદાસ ને તે સ્વરૂપ-નો સારી રીતે અનુભવ કરાવવો તે યશ. ૪—શ્રી ભગવદીય ના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવું તે શ્રી ૫—જ્ઞાન-મન્દિર વસ્ત્ર કરવું તે જ્ઞાન. (મંદિરવસ્ત્ર કર્યા થી હૃદયની શુદ્ધિ થાય છે. એતદર્થ તે જ્ઞાન રૂપ છે.) ૬. વૈરાગ્ય—ભગવદ ઇચ્છા રૂપ કાલ નું-પરિપાલન તે વૈરાગ્ય.

ઉક્ત પ્રકારે અત્રે પ્રાસંગિક ષડૈશ્વર્યો નું નિરૂપણ છે હવે ધર્માદિ ચતુર્વિધ પુરુષાર્થ રૂપ ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક શ્રીમદા-ચાર્યચરણના ભજન ને કહેવામાં આવે છે.

પ્રસંગ ૬—

ધર્મ— सर्वदा सर्व भावेन भजनीयो व्रजाधिपः
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन ।

એ શ્રીમદાચાર્યચરણ ના કથન ને અનુસાર પ્રસંગ ૬ માં કહેલ ભગવત્સેવા તે અત્રે "ધર્મ" રૂપ છે. એમાં શ્રીમદા-ચાર્યચરણ ની ભાવના એ શેઠ કરેલી શ્રીમદનમોહનજી ની સેવા તે પુષ્ટિ ધર્મ ના યે મર્મ રૂપ છે. કેમકે પુષ્ટિસ્થ જીવો માં જે દીનતા એક માત્ર ફલાત્મક સાધન રૂપ હોય છે. એ દીનતા ને શેઠ પુરુષોત્તમદાસે "इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः" એ દાસ્યભાવ રૂપ શ્રીમદાચાર્યચરણ પ્રતિની દાસત્વ ભાવ વાળી સેવા દ્વારા સિદ્ધ કરી છે. એથી તેમના માં

દાસાનુદાસત્વ સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. આ પ્રકારના ભાવની સિદ્ધિને અર્થેજ પુષ્ટિમાર્ગ માં આચાર્યસેવા પ્રસિદ્ધ છે. અત્રે 'વૃત્રચતુ: શ્લોકી' ઉપરની શ્રીગુસાંઇજી ની વ્યાખ્યા તથા "પ્રાચીનવાર્તા-રહસ્ય" પ્રથમભાગ પૃષ્ઠ ૪૦ ઉપર ની શ્રીદામોદરદાસ હરસાની ની વાર્તા ના ભાવપ્રકાશનું અનુસંધાન આવશ્યક છે.

પ્રસંગ ૮—

અર્થ—एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति
प्रभुः सर्व समर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ।

આ આચાર્યકથન ને અનુસાર પ્રભુજ એક માત્ર પુષ્ટિમાર્ગના 'અર્થ' રૂપ છે. આ 'અર્થ' ને શ્રીમદાચાર્યચરણે શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ને ત્યાં 'પત્રાવલંબન' થી પ્રકટ કર્યા છે, આ 'પત્રાવલંબન' દ્વારા 'બ્રહ્મવાદ નું સારી રીતે નિરૂપણકરિ હરિ ના માહાત્મ્ય જ્ઞાન રૂપ 'અર્થ' થીજ અર્થાત્ અખિલ ભુવનેશ્વર સ્વરૂપ પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ ને અર્થ રૂપથી હૃદયમાં ધારણકરવાથીજ ભક્ત નિશ્ચિન્ત થઈ તેનું સેવન કરી શકે છે આમ આ નવમા પ્રસંગ માં પુષ્ટિમાર્ગીય 'અર્થ' પ્રસિદ્ધ છે.

પ્રસંગ ૯—

૩ 'કામ'—यदि श्री गोकुलाधीशोधृतः सर्वात्मना हृदि ।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥

શ્રીમદાચાર્યચરણના આ કથન ને અનુસાર શ્રીગોકુલાધીશજ એક માત્ર પુષ્ટિમાર્ગ માં 'કામ' રૂપથી આશ્રિત થયેલા છે એ શ્રીગોકુલ અર્થાત્ વ્રજભક્તોના વૃંદ ના અધીશ જ્યાં વિદ્યમાન હોય ત્યાં ગોપ ગોપી આદિ સમસ્ત ભક્તવૃંદ ઉપસ્થિત થઈ રહેછે શ્રીમદાચાર્યચરણે આ વસ્તુને જન્માષ્ટમી ના પ્રસંગ થી સ્પષ્ટ કરી છે. અર્થાત આપે નંદમહોત્સવ ના

મિષે શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ને પુષ્ટિમાર્ગીય 'કામ' રૂપ સાક્ષાત્ શ્રીગોકુલાધીશ નો રસાત્મક અનુભવ કરાવ્યો એથીજ ત્યાં વ્રજભક્તો નો પરિકર પણ સ્વતઃ પ્રકટ થયો. ભગવાન્ અને ભગવાન નો પરિકર ભિન્ન રહે નહિ એ વાતનું પણ એના થી જ્ઞાન થઈ રહે છે.

પ્રસંગ ૪—

૪ મોક્ષ—अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वर पादयोः
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः

એ આચાર્ય કથન ને અનુસાર સર્વાત્મનાભાવે શ્રીગોકુલેશ્વર નું સ્મરણ ભજન ન ત્યજવું. કેમકે એજ પુષ્ટિમાર્ગના પરમમોક્ષ રૂપ છે. સર્વાત્મના ભાવવાળું સ્મરણ ભજન આધિદૈવિક સ્વરૂપ પ્રાપ્તિ વિના સિદ્ધ થઈ શકતું નથી કેમકે તેમાં ધર્મી સંયોગ વિપ્રયોગાત્મક રસ ની સ્થિતિ હોય છે. અતઃ તેના અનુભવ અર્થે સ્વ ધર્મી રૂપની આવશ્યકતા રહેલી હોય છે. આ પ્રકારનું ધર્મી રૂપ શેઠ પુરુષોત્તમદાસને સિદ્ધ થયું હતું તે પૂર્વે કહેવાયેલું છે.

રામદાસ

૧ ભૌતિક ઇતિહાસઃ- રામદાસ નો વિશેષ ઇતિહાસ અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. " વાર્તા " અને " ભાવપ્રકાશ " ને અનુસાર આ રામદાસ પૂરવ ના સારસ્વત બ્રાહ્મણ હતા- તેઓ ગંગાસાગરની સમીપના કોઈ એક ગામમાં રહેતા હતા તેમના પિતા સૂર્યના ઉપાસક હતા. સૂર્યની પ્રસન્નતાથી તેમને ત્યાં રામદાસનો જન્મ થયો હતો. રામદાસ જ્યારે આઠ વર્ષના થયા ત્યારે તેમનુ લગ્ન કરવામાં આવ્યું હતું.

તેમની સ્ત્રી નું નામ પ્રાપ્ત થતું નથી. તેમને એક પુત્ર પણ થયો હતો

રામદાસ પ્રારંભમાં મર્યાદામાર્ગીય કોઈ વૈષ્ણવની સાથે ગંગાસાગર ગયા હતા. ત્યાં તેમને એક ભગવત્સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયું હતું. પુનઃ તે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી નો યશ સાંભળી તેમના દર્શને પુરૂષોત્તમપુરી જતા હતા. ત્યાં રસ્તામાં તેમને આચાર્ય શ્રી નાં દર્શન થયાં હતાં. તે સમયે આચાર્યશ્રી થી પ્રભાવિત થઈ તેમણે આપશ્રી ને પોતાના ઘરમાં પધરાવી સ્ત્રી સહિત દીક્ષા લીધી હતી. રામદાસ નો શરણકાલ પ્રથમ પરિક્રમા નો અર્થાત્ વિ સં૦ ૧૫૫૩ ની આસ પાસ નો પ્રાપ્ત થાય છે.

શરણ અનન્તર રામદાસે સમ્પ્રદાય ની રીતિ ને અનુસાર ગંગાસાગર થી પ્રાપ્ત થયેલ શ્રીઠાકુરજીને આચાર્ય-શ્રી થી પુષ્ટ કરાવી સેવાનો પ્રારંભ કર્યો હતો. આચાર્યશ્રીએ આ ઠાકુરજીનું નામ ' શ્રીનવનીતપ્રિયજી ' ધર્યું હતું જે આજ શ્રીગોકુલમાં ' રાજાઠાકુર ' ના નામથી તિલકાયત શ્રીના માથે બિરાજે છે. આ ઠાકુરજી એ રામદાસ નું દેવું ચૂકાવ્યું હોવાથી તેમને સહુ કોઇ ' રાજાઠાકુર ' ના નામથી સંબોધે છે. આજપણ તે શ્રીગોકુલ ની જમીદારી ના માલિક રૂપથીજ ગોકુલમાં બિરાજે છે.

રામદાસની પાસે અઢલક દ્રવ્યહતું તેથી તે સર્વ પ્રકાર ના વ્યાપારો ને છોડી અષ્ટ પ્રહર અસ્પર્શ માં રહીનેજ રાજ વૈભવથી શ્રીઠાકુરજી ની સેવા કરતા હતા. પરંતુ પાછલથી જ્યારે તે દ્રવ્ય ઘટ્યું ત્યારે તેમણે શેષ રહેલા દ્રવ્યને વ્યાજ ઉપર મુક્યું. અને તે વ્યાજ દ્વારા સેવાના વૈભવને જાલવી

રાખ્યો. પરંતુ શ્રીઠાકુરજીને આ વાત ઠીક ન લાગી એથી તેમણે તે દ્રવ્ય ના વ્યાજ ને બંધ કરી તેનેજ ખર્ચ કરવા માંડયું એમ કરતાં જ્યારે તે દ્રવ્ય સમ્પૂર્ણ ઘટયું ત્યારે કેટલાક વખત પર્યંત ઉધાર લઈ કામ ચલાવ્યું. આ પ્રકાર ના વ્યવહારથી શ્રી ઠાકુરજી ને જ્યારે પરિશ્રમ પડયો જાણ્યો ત્યારે તેમણે અસ્પર્શતા ને છોડી અન્યત્ર જઈ સિપાહીગીરી કરવા માંડી. જ્યારે તે અડેલ ગયા ત્યારે આચાર્યશ્રીએ તેમની ધીરજ નાં વખાણ કર્યાં.

રામદાસની પ્રીતિ આચાર્યશ્રી માં વિશેષ હતી એ તેમના અડેલમાં ખાડા પૂરવાના પ્રસંગ થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. તે સમયે લોકલજ્જા તેમજ સિપાહીની પોશાક આદિની પણ ઉપેક્ષા કરી ને તે આચાર્યશ્રીની સેવા માં તત્પર થયા હતા.

રામદાસ નો ભાવ અલૌકિક હતો. જ્યારે સ્ત્રીએ એક પુત્ર અર્થે તેમને બીજા વિવાહ નું કહ્યું ત્યારે તેમણે પોતાનો તે પ્રતિ વૈરાગ્ય બતાવી પોતાના ઠાકુરજી માંજ વાત્સલ્ય ભાવ થી સેવા કરવાને કહ્યું, પરન્તુ સ્ત્રી એ સકામ ભાવ થી તે સેવા કરી જે થી તેને એક પુત્ર થયો.

રામદાસ ની ધીરજ અપરિમિત હતી તેમણે તમામ દ્રવ્ય ખૂટી ગયા છતાં પોતાની ધીરજ ને ન છોડી હતી. તેમનો પુષ્ટિ-ધર્મ પણ અદ્વિતીય હતો જ્યારે તેમણે શ્રીઠાકુરજી ને પરિશ્રમ પડ્યો જાણ્યો ત્યારે તેઓ લોકલજ્જા આદિ ને છોડી સિપાહીગીરી માં રહ્યાં આ તેમના સાહસ ની પરાકાષ્ઠા હતી.

૨. વાર્તા-સ્વારસ્ય:—રામદાસની વાર્તા પુષ્ટિમુક્તિ ના

'વીર્ય' ધર્મની સૂચક છે. એમાં પરાક્રમ સમ્પન્ન વિવેક, ધૈર્ય અને આશ્રય ની પરાકાષ્ઠા રહેલી અનુભવાય છે. પ્રભુના અસાધારણ વીર્ય- પરાક્રમ- વિના પુષ્ટિનાં વિવેકાદિ સિદ્ધ થઈ શકતાં નથી.

૧ વિવેક: -- "विवेकस्तु हरि: सर्वंनिजेच्छात: करिष्यति" ઇત્યાદિ આચાર્યચરણે નિરૂપેલી વિવેક ની આજ્ઞાઓ ને રામદાસે વ્યાજે મૂકેલા દ્રવ્ય ના સંપૂર્ણ અભાવ સમયે પણ પ્રાર્થનાદિ ની ઉપેક્ષા કરી પ્રભુ ને પરિશ્રમ પડતો જાણી સિપાહીગીરી ની નોકરી ને સ્વીકારી તે વિવેક ની પરાકાષ્ઠા ને સિદ્ધ કરી છે. " प्रार्थिते वा ततः किंस्यात् स्वाम्यभिप्राय संशयात् " ઇત્યાદિ આજ્ઞાઓ અત્રે સ્મરણીય છે.

૨ ધૈર્ય:- "त्रिदुःख सहनं धैर्यम्" એ આચાર્યચરણે નિરૂપેલા ધૈર્ય ને રામદાસે લોકલજ્જા અને ભગવત્સેવાદિ માં નેગાદિ ની થયેલી ત્રુટિ આદિ લૌકિક અલૌકિક દુઃખોં ને સહન કરી ને સ્પષ્ટ કર્યું છે. અત્યન્ત દ્રવ્ય સમ્પન્ન અવસ્થા ને ભોગવ્યા પછી પણ ભગવત્સુખાર્થે સિપાહીગિરિ ની નોકરી કરેલી. એમાં જે અસહ્ય લૌકિક લજ્જા આદિ દુઃખો રહેલાં છે તે ભૌતિક દુખો ને રામદાસે જેમ સહન કર્યાં તેમ ભગવત્સેવા માં બાંધેલા નેગની ત્રુટિ નું અલૌકિક આધિદૈવિક દુઃખ પણ અસહ્ય જ હતું એને પણ રામદાસે સહન કર્યું છે. એ પ્રકારે સ્ત્રીનું પુત્રકામનાદિ નું માનસિક-આધ્યાત્મિક દુઃખ પણ તેમણે સહન કર્યું. આ ધૈર્ય ની પરાકાષ્ઠા છે.

૩ આશ્રય:— "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः ।" એ આચાર્ય નિરૂપિત આશ્રય ને રામદાસે સ્ત્રી ની પુત્ર કામના સમયે શ્રીહરિ પ્રતિજ બાલભાવ ની સેવા ના ઉપદેશ

થી સ્પષ્ટ કરેલો છે. આમ રામદાસ ની આ વાર્તા માં પુષ્ટિ ના વિવેક ધૈર્યાદિ દ્વારા પુષ્ટિમુક્તિ ના 'વીર્ય' ધર્મ નું નિરૂપણ છે.

ગદાધરદાસ

૧. ભૌતિક ઇતિહાસ—ગદાધરદાસ નો વિશેષ ઇતિહાસ અન્યત્ર પ્રાપ્ત ન થી. "વાર્તા" એવં "ભાવપ્રકાશ" ને અનુસાર તેઓ કડા- માણિકપુર ના સારસ્વત 'કપિલ' સંજ્ઞાધારી બ્રાહ્મણ હતા. તેમને એક કાકા હતા. જે પ્રયાગ માં રહતા હતા.

ગદાધરદાસ મકર સ્નાનાર્થે જ્યારે પ્રયાગ આવતા ત્યારે તે તેમના કાકા ને ત્યાં ઉતરતા. એક સમય જ્યારે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી પ્રયાગ પધાર્યા હતા- ત્યારે તેમની સાથે ચર્ચા કરવાને ગદાધરદાસના કાકા આપના મુકામે ગયા હતા. એ વખતે ગદાધરદાસ પણ એમની સાથેજ હતા.

ગદાધરદાસ ના કાકાએ આચાર્યશ્રી ને કૃષ્ણ, રામ, નૃસિંહ અને નારાયણ આદિ માં મુખ્ય ઈશ્વર કોણ એમ જ્યારે પ્રશ્ન કર્યો ત્યારે આપે લોક યુક્તિ એ ચક્રવર્તિ રાજાના દૃષ્ટાંતે મુખ્ય ઇશ્વર રૂપ થી શ્રીકૃષ્ણનું પ્રતિપાદન કર્યું આ સમય ગદાધરદાસ સાથે હતા તે આ સાંભળી આચાર્યશ્રી ની શરણે આવ્યા.

ગદાધરદાસે શરણ અનન્તર પોતાના કાકા શૈવી હોવાથી તેમના ઘરનો ત્યાગ કર્યો. કાકા ને ત્યાં એક શ્રીમદનમોહનજી નુ સ્વરૂપ હતું તે તેમણે કાકા ની પાસે થી માંગી લીધું. આચાર્ય શ્રી એ આ સ્વરૂપ ને પુષ્ટ કરી તેમને સેવાર્થે પધરાવી આપ્યું-

અને ઉપદેશ રૂપથી 'ભક્તિવર્દ્ધિની ને પ્રકટકરી તેનુ વ્યાખ્યાન કરયું 'ભક્તિવર્દ્ધિની' ના "अव्यावृत्तं भजेत् कृष्ण" વાલા આચાર્ય વાક્યને શ્રવણ કરીને ગદાધરદાસે તેને પોતાના જીવન પર્યન્ત અનુસરવાનો નિશ્ચય કર્યો.

ગદાધરદાસ આચાર્ય શ્રી ની શરણે આવ્યા ત્યારે તેઓ ત્રીસ વર્ષ ના હતા. તે સમયે તેમનાં માતા-પિતા વિદ્યમાન ન હતાં તેમજ તેમનું લગ્ન પણ થયું ન હતું

આચાર્યશ્રીના તિરોધાન અનન્તર ગદાધરદાસ ની ઉપસ્થિતિ નો કોઇ પણ ઉલ્લેખ કંઈ પણ પ્રાપ્ત થતો ન હોવાથી એમ અનુમાન થઈ શકે છે કે તેમનો અંતિમ કાલ વિ૦ સં૦ ૧૫૮૭ ના આસ-પાસ નો હોવો જોઇએ. તેઓ ત્રીસવર્ષે શરણે આવ્યા અને તેમણે કેટલાક કાલ પર્યંત સેવા કરી તેમજ માધવદાસાદિ ને અનન્યભક્તિ નું દાન કર્યું એ સર્વ ને જોતાં તેમની આયુ ૬૦ થી ૬૪ વર્ષ ની અનુમાન થઈ શકે છે. એ ઉપરથી તેમનો શરણકાલ વિ૦ સં૦ ૧૫૫૨ લગભગ નો સમજી શકાય તેમ છે.

ગદાધરદાસ ની વૈષ્ણવો ઉપર પ્રીતિ અદ્‌ભુતહતી એ તેમના "गोविन्द पदपल्लव सिर पर विराजमान" વાળા પદ થી સ્પષ્ટ થઇ રહે છે. એમાં "अधम जन गदाधर से पावत सन्मान" વાળા વાક્ય થી તેમની અલૌકિક દીનતા નું પણ ભાન થઈ રહે છે. તેમનામાં આચાર્યશ્રી ની કૃપા થી વાક્-સિદ્ધિ પણ હતી તે માધવદાસ ને પ્રાપ્ત થયેલ ભક્તિ થી જાણી શકાયછે. તેઓ નિરભિમાની સમદર્શી અને ત્યાગી પુરુષહતા. એથીજ તેમના ક્ષણિક સંગ થી વણઝારો પણ વૈષ્ણવ થયો હતો. તેમની ભક્તિ ઉગ્ર- વિપ્રયોગાત્મક હતી એથી જ્યારે પ્રભુ દિનભર ભૂખ્યા રહ્યા ત્યારે તેઓ વ્યાકુલ થયા અ

તે વ્યાકુલતા ના કારણેજ તેમણે રાત્રે અનાયાસ પૈસા પ્રાપ્ત થતાં માત્ર બજારની જલેબી પ્રભુને ભોગ ધરી હતી. આવી ઉગ્રભક્તિ પ્રાપ્ત થયેજ ભકત દેહાનુસંધાન રહિત થઇ શકે છે. અને ત્યારેજ તે જીવધર્મરૂપ આચારવિચારો ને સહજ વિસરી જાય છે. અત્રે વાઘાજી રજપૂત નું દૃષ્ટાંત પણ સ્મરણીય છે. સેવામાં જે લોકવેદના આચારો નું પાલન કર્તવ્યરૂપછે તે માત્ર જીવ ના હૃદય ની શુદ્ધિ ને અર્થેજ હોય છે. એ શુદ્ધિ જો ઉગ્ર ભકિત દ્વારા સ્વતઃ સિદ્ધ થઇ જાય તો તે જીવ ને તેવા પ્રકાર ના આચાર વિચારાદિ નું ધર્મ રૂપ થી પાલન કરવું શેષ રહેતું નથીજ તો પણ તેવા ભકતોમાં યે તેવા આચારાદિ સામાન્ય અવસ્થા માં દેખાયે છે અને તે કેવળ તેમને માટે તો લોકવેદ ના સંગ્રહાર્થ રૂપ અને ભગવદાજ્ઞાઓ ના પાલન રુપ થીજ હોય છે. અન્ય રૂપ થી નહિજ. કારણ કે જો તેવા મહાનપુરૂષો તે આચારો નું સામાન્ય અવસ્થાઓ મા પણ ઉલ્લંઘન કરેતો તેનું અનુકરણ સાધારણ જનતા કરવા લાગીજાય એથી સામાન્ય ધર્મો નો વ્યતિક્રમ થઇ ને તે પરોક્ષ ભગવદાજ્ઞા ઓના ઉલ્લંઘન નો દોષ પણ પ્રાપ્ત થઈ રહે.

અત્રે જે જલેબી નું સ્નેહાધિક્યે તાપભાવથી પ્રભુને સમરપણ કરવામાં આવ્યું છે તેને ગદાધરદાસ પોતાના ઉપયોગ માં લીધી નથી એ વસ્તુ વિશેષ કરીને દ્રષ્ટવ્ય છે તેઓ તો તે સમયે ભૂખ્યાજ સુઈ રહયા હતા. એથી તેમના થી આચાર મર્યાદા નું ઉલ્લંઘન પણ થયું નથી।

તેમણે જે પ્રકાર ના સ્નેહ થી પ્રભુને તેનો ભોગ ધર્યો તેજ પ્રકાર ના સ્નેહ થી વૈષ્ણવોના સ્વરૂપ ને પણ ભગવદ્ ભાવરૂપ જાણી નેજ તે જલેબી વૈષ્ણવો ને પણ લેવડાવી એ થી સ્નેહ ની શુદ્ધતા એ તે કાર્ય પણ પુષ્ટિરૂપજ થઈ રહયું.

અત: તેમાં કોઈ પણ પ્રકારના દોષ ની સંભાવના રહે લી નથી આમ ગદાધરદાસ ની ભકિતની ઉત્કર્ષતા સ્વત: સિદ્ધ છે.

ગદાધરદાસ કવિહુતા. તેમનાં પદો માં ' ગદાધર ' છાપ પ્રાપ્ત થઈ રહે છે એમનો કાવ્ય પરિચય ' પુષ્ટિમાર્ગીય ભકત કવિ ' માં હવે પછી આપવામાં આવશે—

વાર્તા—સ્વારસ્ય

ગદાધરદાસજી ની વાર્તા નું સ્વરૂપ પ્રથમ ભાગ ની પ્રસ્તાવના માં જણાવ્યા પ્રમાણે (પુષ્ટિ) ઉતિ નું છે. ઉતિલીલા અર્થાત કર્મવાસના નું સ્વરૂપ. આહિં તે ઉતિ પુષ્ટિ ના ભાવરૂપે હોવાથી આ વાસના તે પુષ્ટિની સેવા ભાવના રૂપમાં પ્રસિદ્ધ છે. ભાવના એ ભાવનું આધ્યાત્મિક સ્વરૂપ છે (જુઓ. વાર્તા રહસ્ય પ્રથમ ભાગ પત્ર ૧૦) ભાવના થીજ ભાવ રૂપ હરિ ની પ્રાપ્તી છે. આ ભાવના નું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે—

" भावस्तु विप्रयोगेण तापक्लेशैर्विचारणम् । "

અર્થાત્ " વિરહે કરી તાપકલેશ વિચાર કરવામાં આવે તે ભાવ — " અહીં " વિચાર કરવામાં આવે " એશબ્દો થી સાધન રૂપતા કહેલી છે. અતએવ એહી જે ભાવ શબ્દ યોજ્યોછે તે સાધનરૂપ ભાવના ના અર્થમાં પ્રયુક્તછે.ભાગવતોક્ત ઉતિ લીલા માં સદ્વાસના, અસદ્વાસના અને સદસદ્વાસના એમ ત્રણ ભેદ રહેલા હોય છે કિન્તુ અહીં ભાવરૂપ પુષ્ટિ પ્રકારમાં તે કેવલ સદ્ભાવના રૂપજ છે. આ સદ્ભાવના પોતાના સામર્થ્યે થી અસદ્વાસના અને સદસદ્વાસના ને પોતાની સદૃશ કરી દે છે તેનાં વાસ્તવિક ઉદાહરણ ગદાધરદાસ ની આ વાર્તા માં રહેલાં છે માટે આ વાર્તા આચાર્ય શ્રી ની ભાવાત્મક ઉતિ-લીલા પ્રસિદ્ધ છે—

સદ્વાસના- પુષ્ટિ માર્ગ માં વાસના નું સ્વરૂપ ભાવના નું છે. અને તે ભાવના ભાવ સિદ્ધ કરવાનું મુખ્ય સાધન છે.

ગદાધરદાસ માં આ સદ્‌ભાવના કેવા રૂપમાં સ્થિત હતી તે વાર્તા ના પ્રથમ પ્રસંગ થી આરીતે સ્પષ્ટ છે—

પ્રારંભમાં ગદાધરદાસ ની ભાવના ની શરૂઆત કેવી રીતે થઈ તે બતાવે છે— " चित्त मानसी सेवा फल रूप में इन कों लाग्यो । " અહીં " लाग्यो " શબ્દ મૂકવામાં આ વ્યાં છે તે સાત્વિક રૂપતા ના સ્પષ્ટિકરણ રૂપ છે. અતએવ ગદાધરદાસ ની ભકિત ની પ્રવૃત્તિ માનસી રૂપ સદ્‌ભાવના થી શરૂ થાય છે. કિન્તુ આ સાત્વિક રૂપ પ્રારંભની માનસી ભાવના ને તનુજા વિત્તજાની પણ અપેક્ષા રહેલી હોય છે. માટે આગળ વાર્તા માં " परन्तु या मानसी भावना में वैष्णव कों समाधान नाहीं " એ પ્રમાણે બાહ્ય સેવા ની આવશ્યકતા કહેલી છે. એનાં ક્લેશ ગદાધરદાસ ને થયો તે જણાવવાને આગળ વાર્તા માં કહ્યું છે કે— " तातें छाती में आगि लागी जो आछु कछू नाही धर्यो " આ પ્રકારના વિરહથી ગદાધરદાસ ની ઉક્ત સાત્વિક રૂપ " સદ્‌ભાવના " સિદ્ધભાવ સ્વરૂપમાં પરિવર્તિત થઈ ગઈ. આ પ્રાપ્ત ભાવનું સ્વરૂપ તેમના " गोविन्द पद पल्लव सिर पर विराजमान " એ આખાય પદનાં અક્ષરે અક્ષર માં ઝળકે છે આ સિદ્ધ સ્વરૂપા ભાવ ના પ્રતાપેજ તેમણે પ્રસંગ બે માં વર્ણિત ઉતિલીલાની અસદ્વાસના નાં સ્થિતિ ભક્ત માધવદાસ કે જેની વેશ્યામાં અસદ્પ્રીતિહતી તેને તેમણે ભકિત રૂપ પરમભાવનું દાન કર્યું તેનું વર્ણન વાર્તાના આ શબ્દો થી સ્પષ્ટ છે—

" तब प्रसन्न होइ के माधोदास सों कहे जो-तिहारो लायो साग श्रीठाकुर जी आरोगे तातें तोकों हरि भक्ति दृढ होऊ। यह आसिरबाद दिये। એજ પ્રકારે ત્રીજા પ્રસંગ માં સદ્ અને અસદ્વાસના રૂપ વણઝારાનો પણ ગદાધરદાસે પોતા માં સ્થિત સિદ્ધ ભાવરૂપ ભકિતના બળે ઉદ્ધાર કર્યો એ રીતે વાર્તા માં ઊતિરૂપ સદ્વાસના ના પુષ્ટિ સ્વરૂપ નું વર્ણન કર્યું છે-

આ સદ્‌ભાવના રૂપ પુષ્ટિ નું સ્વરૂપ આચાર્ય શ્રીના દક્ષિણ શ્રીહસ્ત રૂપછે.

બીજા પ્રકારે આ વાર્તા માં ' યશ ' નું પ્રતિપાદન છે. ' યશ ' એ પુષ્ટિ ધર્મ છે. અત આ ' યશ ' પુષ્ટિ મોક્ષ (મુકિત) ના ધર્મ રૂપ છે. ગદાધરદાસે માધવદાસ ને ભકિત નું જે દાન કર્યું છે તે આચાર્ય શ્રી વિના અન્યત્ર દુર્લભ છે. સાયુજ્યાદિ મર્યાદા મુકિત ભગવાન અને તેમના ભકતો આપી શકે છે કિન્તુ પુષ્ટિ ભકિત નું દાન તો કેવળ શ્રીમદાચાર્ય ચરણજ કરી શકે છે. એવી તે ભકિત અદેય દુર્લભ છે. એનું દાન શ્રીમદાચાર્ય ચરણજ કરી શકતા હોવા થી ." अदेयदान दक्षश्च " એ પ્રકારે આપ નું નામ પ્રસિદ્ધ ! થયેલું છે આ પ્રકારનું અદેયદાન ગદાધરદાસે શ્રીમદાચાર્યચરણના આશ્રયથી માધવદાસ ને કર્યું એથી ગદાધરદાસ માં શ્રી-મદાચાર્યચરણનો ' યશ ' ધર્મ પ્રકટ રહેલો સિદ્ધ થઈ રહે છે. એનાથી માધવદાસ વિષયાનન્દ થી મૂકત થઈ ભજના-નંદરૂપ પુષ્ટિ ભકિત વાલી મુકિત (મોક્ષ) ને પ્રાપ્ત થયા. અતઃ આ ' યશ ' પુષ્ટિ મુકિત ના ધર્મ રૂપ છે.

પદ્મનાભદાસ ની વાર્તા માં જે આશ્રય નું પ્રતિપાદન છે તે શુદ્ધ પુષ્ટિ ની અવસ્થા રૂપ છે. એથી ગદાધરદાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ ઉતિ રૂપ જમણા શ્રીહસ્ત રૂપ છે જ્યારે પદ્મનાભ-દાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ ના શુદ્ધ આશ્રય રૂપ આચાર્ય શ્રી ના વામ શ્રીહસ્તરૂપ છે.આ વામ શ્રીહસ્તરૂપ આશ્રય સ્વાધીના ભક્તિરૂપ છે. અર્થાત્‌"कृष्णाधीनातु मर्यादा स्वाधीना पुष्टि रुच्यते"એ આચાર્ય કથન માં નિરુપિત સ્વાધીનાપુષ્ટિભક્તિ અત્ર 'આશ્રય' રૂપથી પ્રસિદ્ધ છે. એમાં સ્વરુપ ની પણ અપેક્ષા રહેતી નથી તેમાં ' કેવળ ' ભાવજ આશ્રય રૂપ થી સિદ્ધ હોય છે આ

'આશ્રય' રૂપ શુદ્ધ પુષ્ટિ નું વિવેચન અમારા તરફ થી પ્રકાશિત, પુષ્ટિમાર્ગ' માં થયેલુ છે એથી અત્ર તેનું પિષ્ટ પેષણ કરવામાં આવતું નથી. પદ્મનાભદાસે અડેલમાં શ્રીમથુરાધીશ ને શ્રીમહાપ્રભુજી ને ત્યાં પધારવાની વિનતી કરી-પોતાની સ્વરૂપ નિરપેક્ષતા અને સ્વાધીના ભાવ અવસ્થા ને સ્પષ્ટ કરી છે. એથી તે શુદ્ધ આશ્રય અવસ્થા રૂપ છે.

માધવ દાસ

ભૌતિક ઇતિહાસ—

માધવદાસ નું વિશેષ વૃત્ત અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. "વાર્તા" અને "ભાવપ્રકાશ" ને અનુસાર માધવદાસ કડા માણેકપુર માં રહેતા હતા. તેમના માતા પિતા નું નામ જ્ઞાત નથી. એમને એક મોટા ભાઈ હતા તેમનું નામ વેણીદાસ હતું એ બન્ને ભાઈ પ્રયાગમાં શ્રીઆચાર્યશ્રીની શરણે આવ્યા હતા.

માધવદાસ ની સ્થિતિ શ્રીમહાચાર્યચરણ ની ભૂતલ સ્થિતિ પછી ઉપલબ્ધ થતી નથી. એથી તેઓ વિ૦ સં ૧૫૮૭ પહેલાં જ ગત થઈ ગયેલા હોય એમ જણાય છે. તેમણે શરણે આવ્યા પછી પણ ઘણા વર્ષો સુધિ વેશ્યા ની સાથે વિષય ભોગ ભોગ વ્યો હતો. ત્યાર પછી ગદાધરદાસ ના આશીર્વાદ થી તે અનન્ય ભક્ત થયા હતા તેમણે વિ૦ સં૦ ૧૫૭૩-૭૪ માં વેશ્યા ને છોડી હતી એમ "વાર્તા" ના આ કથન થી સમજાય છે—

"जो वेश्या को दूरि करी नी। ++ तब वेश्या ने बिना घी की अंगाकरी खाय निर्बाह पंद्रह वर्ष लों कियो । पाछे श्रीगुसांई जी कडा में पधारे तब वेस्या ने सुनी। श्रीगुसांई जी सों आय बिनती करी। ... महाराज मोकों माधोदास कहि गए हे जो तू श्रीगुसांई जी की दासी है। सो आपु के लिए

पंद्रह बरस त्यों सूधी अंगाकरी साथ देह राखी।"
અહિ "माधोदास कहि गए हैं" અર્થાત્ માધવદાસ કહિ ગયા હતા. એ શબ્દો થી માધોદાસ નુ જેમ પરોક્ષ સિદ્ધ થઈ રહે છે તેમ શ્રીગુસાઈજી નું સ્વતંત્ર રૂપ થી સર્વ પ્રથમ કડા માં આગમન થયું તેના પૂર્વ પંદ્રહ વર્ષ પહેલાં માધવદાસે વેશ્યા નો ત્યાગ કર્યો હતો એ પણ સ્પષ્ટ કહેવાયલું છે. શ્રીગુ-સાંઈજી નું સર્વપ્રથમ સ્વતંત્ર રૂપ થી કડા માં આગમન વિ૦ સં૦ ૧૫૮૮ માં થયે લુ છે. એ સમય આપે અડેલથી ગોપાલપુર જતાં વચ્ચે કડામાં મુકામ કર્યો હતો. અત: ૧૫૮૮ માં થી ૧૫ વર્ષ બાદજતાં સં૦ ૧૫૭૩ આવે છે. આ સમય માધવદાસ ની અનન્ય ભકિત ના પ્રારંભનો સિદ્ધ થઈ રહે છે.

અત: માધવદાસ ની ભૂતલ સ્થિતિ ઓછા માં ઓછી ૫૦-૬૦ વર્ષ ની માનવામાં આવે તા તેઓ વિ૦ સં૦ ૧૫૫૨ માં આચાર્ય શ્રી ની શરણે આવ્યા હોવા જોઇયે. કેમકે ત્યાર પછી તેમણે ઘણા વર્ષો સુધિ વેશ્યા નો સંગ કર્યો. પછી તેનો ત્યાગ કર્યો. પછી દક્ષિણ કમાવા ગયા. ત્યાં થી મોતિ ની માલા લાવ્યા અને આચાર્યશ્રી ને સમર્પિત કરી આ બધી ઘટનામાં ઓછામાં ઓછા વીસ વર્ષ નું અનુમાન આવશ્યક છે. એથી તેમના શરણ કાલ નો ઉકત સંવત ઠીક લાગે છે.

માધવદાસ ની ભકિત સત્ય અટલ અને શુભનિષ્ઠા વાળી હતી. તેમણે શ્રીમદાઆચાર્યચરણ ની આગળ પણ પોતાના દોષને છિપાવ્યો નહિ.તેમજ શ્રીનવનીતપ્રિયજીએ જ્યારે તેમની પરીક્ષા કરી ત્યારે પણ તેઓ જરા પણ ધૈર્ય થી ચલિત થયા નહિ. એમની શુભનિષ્ઠા ભાઇના સહવાસના ત્યાગ થી પણ પ્રત્યક્ષ થઈ રહે છે. જ્યારે ભાઈએ કાપટય ભાવ થી "આ બધુ પ્રભુનુંજ છે" એમ કહી માલા લેવાની ના

પાડી ત્યારે માધવદાસ પોતાના હિસ્સા નું દ્રવ્ય લઈ અલગ થયા અને પોતે જે મનોરથ કર્યો હતો તેને પૂર્ણ કરવાને અર્થે દક્ષિણ જવાનું સાહસ ખેડયું. અને ત્યાંથી તેવીજ માલા ખરીદી અડેલ આવી શ્રીઆચાર્યજીને તે શ્રીનવનીતપ્રિયજીના અર્થેભેટ કરી. આ માલા આજપણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીનેત્યાં નાથદ્વારામાં વિદ્યમાન છે અને તેનું નામ 'માધવદાસ જ પ્રચલિત છે.

માધવદાસ ના સંગ થી વેશ્યા માં પણ ભક્તિભાવ પ્રકટયો અને તેને લઈને તે આગ્રહ પૂર્વક શ્રીગુસાંઈજી ની સેવકની થઈ. એ સમયે વેશ્યા માં રહેલો વિષયભાવ પ્રભુપ્રતિ સુદૃઢ પતિવ્રતા ધર્મના રૂપમાં પલટાઇ ગયો અને તેણે અટકાવ માં પણ પ્રભુનો વિરહ સહ્ય ન થવાથી સેવા કરવા માંડી અને શુદ્ધ થયે અપરસ કાઢી શ્રીની સેવા મર્યાદાની પણતે રક્ષા કરતી. એનાથી શ્રીગુસાંઈજી પણ પ્રસન્ન થતા. અહીં શેરગઢના દામોદરદાસની માતા વીરબાઇ નું દૃષ્ટાંત પણ સ્મરણીય છે।

૨. વાર્તા—સ્વારસ્ય—

માધવદાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ મુક્તિ ના 'શ્રી' ધર્મ રૂપ છે. એમાં માધવદાસ નો શ્રીનવનીતપ્રિયજી પ્રતિ જેમ દૃઢ વિશ્વાસ સ્પષ્ટ થયો છે તેમ તેમના માં તાદૃશ ભાવ વાળી અલૌકિક સાક્ષાત્ સેવા પણ ફલિત થયેલી માલા ના પ્રસંગ થી અનુભવાય છે. "श्रियोऽहि परमाकाष्ठा सेवका स्तादृशा यदि।" એ વાક્ય અત્રે દ્રષ્ટવ્ય છે. પુષ્ટિ મોક્ષ રૂપ શ્રીમદાચાર્ય ચરણ માં પોતાના તે વિશ્વાસ ને સમર્પિત કરી માધવદાસે પોતામાં શ્રીમદાચાર્યચરણ ના 'શ્રી' ધર્મ ને સ્પષ્ટ કર્યો છે.

———:※:———

હરિવંશપાઠક

૧. ભૌતિક ઇતિહાસઃ— હરિવંશપાઠક નું વિશેષ વૃતાંત-

અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. " વાર્તા " અને " ભાવપ્રકાશ " ને અનુ-સાર આ હરિવંશ પાઠક કાશી ના હતા. પહેલાં તેઓ ગણેશ ના ઉપાસક હતા. પરન્તુ પછી થી તેઓ શ્રીઆચાર્યજીની શરણે આવ્યા હતા. તેમના શરણ કાલ ના નિશ્ચય અર્થે 'ભાવપ્રકાશ' ની આ પંક્તિયો દ્રષ્ટવ્ય છે—

" सो जब श्री आचार्य जी पत्रावलंबन काशी में किए पंडितन कों जीते तब हरिवंश पाठक के मन में आई जो मैं हू श्री आचार्य जी महाप्रभुन के दरसन करि आऊं। ××× सो श्री आचार्य जी पास दोरयो आयो दंडवत् करि बिनती करी महाराज××× अब मेरो अपराध छिमा करि सरनि लेहु

આ પંસ્તિ ઓ થી એ સ્પષ્ટ છે કે તેઓ પત્રા વલંબન સમયે કાશીમાં આચાર્યશ્રી ની શરણે આવ્યા હતા. પ્રત્રાવલંબન નો સમય દ્વિગ્વિજ ય ને અનુસાર તૃતીય પરિક્રમા નો છે. વાર્તામાં પણ " पाछें आपु पृथ्वी परिक्रमा कों पधारे " એ શબ્દ પ્રાપ્ત થાય છે એથી જે લોકો નું એવું માનવું છે કે ત્રણે પરિક્રમા અનન્તર પત્રાવલંબન ની રચના થઈ છે તે અસત્ય રે છે તૃતીય પરિક્રમા સમયે આપ વિ૦ સં૦ ૧૫૬૪ માં કાશી પધાર્યા હતા અતઃ હરિવંશ ના શરણકાલ નો સંવત પણ તેજ સિદ્ધ થઈ રહે છે.

હરિવંશ પાઠક લોકમાં સારી રીતે વૈરાગ્ય વાલા હતા. એથીજ તેમણે હાકિમ ત્રા પાસે અન્ય કંઈપણ ન માંગતાં કેવળ સેવા ની સિદ્ધિ ની ભાવનાએ શીઘ્રાતિશીઘ્ર

કાશી જવાના પ્રબંધની જ યાચના કરી.

હરિવંશ પાઠક ને એક સ્ત્રી તેમજ બે સંતાન હતાં તેઓ વ્યવસાય અર્થે વિશેષ કરીને પટના રહેતા હતા. ત્યાં થી તે પ્રતિ ઉત્સવ ઉપર પોતાના ઘરે આવીને શ્રીઠાકુરજી ની સેવા કરતા. એમણે શ્રીમહાચાર્યચરણ ની ઇચ્છા ને જાણી આપ શ્રી ની સેવકની પંચવર્ષીય કૃષ્ણાનું પાલન કર્યું હતું અને તે મોટી ઉમરની થઇ ત્યારે લોકાપવાદના ભયે તેને શ્રીગુસાંઇજી ને ત્યાં મુકી આવ્યા હતા. શ્રીમહાચાર્યચરણ ના સેવકો ઉપર હરિવંશ ની અત્યંત પ્રીતિ આથી સિદ્ધ થઇ રહે છે.

હરિવંશ ના સેવ્યસ્વરૂપ બાલકૃષ્ણ જી હતા જે ને બજાર થી ન્યોછાવર દઇ મેળવ્યા હતા.

૨ વાર્તા—સ્વારસ્ય— આ વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષરૂપ શ્રીમહાચાર્યચરણ ના 'વૈરાગ્ય' ધર્મ રૂપ છે. એથી હરિવંશમાં ભગવત્સુખાર્થ સર્વ પ્રલોભન ના ત્યાગ ને અત્રે સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે. પુષ્ટિમાર્ગ માં ભગવત્સુખાર્થ સર્વ વસ્તુના ત્યાગને જ વૈરાગ્ય કહેવાયેલો છે—

———:*:———

ગોવિન્દદાસ ભલ્લા

૧ ભૌતિક ઇતિહાસ— ગોવિંદદાસ નું વિશેષ વૃત્તાંત અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. "વાર્તા" અને "ભાવપ્રકાશ" અનુસાર તેઓ થાનેશ્વર ના ક્ષત્રી હતા. તેઓ ત્યાંના હાકિમ ની નોકરી કરતા

તેમાં તેમને ઘણું દ્રવ્ય પ્રાપ્ત થયું હતું૦ એમનુ લગ્ન થયું હતું

જયારે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી થાનેશ્વર પધાર્યા ત્યારે તે આપના સેવક થયા હતા પછી સ્ત્રી અનુકૂલ ન હોવાથી તેમણે શ્રીમદાચાર્યચરણ ને પોતાની સ્થિતિ ને નિવેદન કરી આપની આજ્ઞાનુસાર તે પોતાના દ્રવ્ય ના ચારભાગ કર્યા તેમાં થી એક ભાગ સ્ત્રી ને, એક શ્રીનાથજી ને, અને એક ભાગ આ-ચાર્યશ્રી ને સમર્પિ એક ભાગ પોતાને માટે રાખ્યો પછી તેઓ મહાવન માં શ્રીમથુરાનાથજી ની મર્યાદારિતિથી સેવા કરવા લાગ્યા ત્યાં પોતાના ભાગ નું દ્રવ્ય ઘટયૂં ત્યારેતે શ્રીનાથદ્વારમાં આવી શ્રીનાથજી ની સેવામાં રહ્યા અહિં તે ઓ કોરી ભિક્ષા માંગી પોતાનો નિર્વાહ કરતા આ વાત શ્રીનાથજી ને સોહાઈ નહિં, એથી આપે શ્રીમદાચાર્યચરણ ને તે બાત જતાવી. તે થી શ્રીમદાચાર્યચરણે ત્યાં પધારી ને તેમને સમજા-વ્યા. પરન્તુ દેવદ્રવ્ય અને ગુરુદ્રવ્ય ન લેવાનો તેમનો આગ્રહ જોઈ પાછળ થી તેમને આપે સેવા છોડી દેવાનો આદેશ આપ્યો આદેશાનુસાર તેમણે શ્રીનાથજી ની સેવા છોડી દી ધી અને મથુરામાં કેશવરાયજી ની સેવા નો ઇજારો લીધો. ત્યાં તેમને ત્યાંના હાકિમ થી લડાઇ થઈ અને તેમાં તે માર્યા ગયા. ગુરૂ આજ્ઞા ઉલ્લંઘનનું તેમને એ ફળ મળ્યું કે એકતો શ્રીનાથજી ની સેવા છુટી અને બીજૂં મ્લેચ્છો ના હાથથી તેઓ મારયા ગયા.

તેમનો શરણ આવવાનો સમય સ્પષ્ટરૂપ થી પ્રાપ્ત નથી તોપણ શ્રીનાથજીના પ્રાકટ્ય પછીજ તેઓ શરણ આવ્યાછે એ વાર્તા માં "શ્રીનાથજી નો એકભાગકાઢયા વાળા ઉલ્લેખ થી સ્પષ્ટજ છે. શ્રીનાથજી નો પ્રાદુર્ભાવ વિ૦ સં૦ ૧૫૫૫ માં છે અતઃ તેમનો શરણ કાલ તે પછીનોજ સ્પષ્ટ થાય છે.

ગોવિંદદાસ ભલ્લા નો અંતિમ સમય વિ૦ સં૦૧૫૮૭ નો પૂર્વે છે. કેમકે વાર્તા ને અનુસાર તેમના અંતિમ સમયની ઘટના

શ્રીમહાપ્રભુજી પાસે વૈષ્ણવો એ વ્યકતકરી હતી શ્રીમહાપ્રભુ-જી નું તિરોધાન વિ૦ સં૦ ૧૫૮૭ નિશ્ચિત છે એથી ગોવિંદ-દાસ ના અંતિમ સમય તે પૂર્વ નો સ્પષ્ટ થઈ રહે છે.

ગોવિંદદાસ ભલ્લા એ સેવેલા શ્રીમથુરાનાથજી કાલાંતરે શ્રીમહાપ્રભુજી ને ત્યાં પધાર્યા હતા અને ત્યારથી વંશ પરંપરા એ તે સ્વરૂપ આજ કાંકરોલીમાં ગો૦ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી ને માથે બિરાજમાન છે.

૨વાર્તા સ્વારસ્ય—આ વાર્તામાં પુષ્ટિમોક્ષ ના 'જ્ઞાન' ધર્મ નું સૂચન છે. જ્ઞાન ના આધિક્યે ગોવિંદદાસ થી શ્રીનાથજી ની સેવા ન થઈ શકી અને બ્રહ્મવિદની સમાન તેમણે જહાં તહાં અર્થાત્ કેશવરાયજી મર્યાદા સ્વરૂપની પણ સેવા કરી છે.

આ ભાગમાં આવેલા સ્વરૂપોની યાદી અને વિગત

વાર્તા સં૦	સ્વરૂપોનાં નામ	કોનાં સેવ્ય	હાલ કયાં બિરાજે છે
૧	શ્રીમદન મોહન જી	શ્રીમહાપ્રભુજી	શ્રીમદગોકુલ
૪	શ્રીનવનીત પ્રિયાજી [રાજા ઠાકોર]	”	”
૫	શ્રીબાલકૃષ્ણજી	”	”
૬	શ્રીબાલકૃષ્ણજી	”	શ્રીનાથદ્વારા
૭	શ્રીબાલકૃષ્ણજી	”	”
૮	શ્રીમથુરા નાથ જી	”	શ્રીકાંકરોલી

ગોપાલદાસ અને રૂકમણી ની

વાર્તાઓનાં સ્વારસ્ય

(પત્ર ૧૫ "પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય" પહેલાંનું અનુસંધાન)

ગોપાલદાસની વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષ ના 'ધર્મી' પ્રકાર રૂપ માં રહેલ ધર્મી-પ્રમેય- નું સ્વરૂપ પૂર્વે સ્પષ્ટ થયેલું છે. એમાં ઐશ્વર્યાદિ છ ધર્મો આ પ્રકારે વ્યક્ત થયેલા છે—

ઐશ્વર્ય—"समय पर भगवद् सेवा करते" વિરહ દ્વારા તનની સુધિ ન રહેવા છતાં સમય ઉપર ભગવદ્ સેવા કરવી તે તેમનું ઐશ્વર્ય છે.

વીર્ય—"मोसों तेरो विरह सह्यो नहि जात" શ્રીઠાકુરજી તેમનો વિરહ સહન ન કરતા તે તેમની ભક્તિતેની ઉત્કર્ષતા વીર્ય રૂપ છે.

યશ—"ताते तेरो समाधान करतु हुँ ।" શ્રીઠાકુરજી તેમનું નિરંતર સમાધાન કરતા એ તેમનો 'યશ' છે.

શ્રી—"विरह में सदा मगन रहते" આચાર્યશ્રીના વિપ્રયોગાત્મક રસ સદૃશ નિરંતર સ્થિતિ રહેવી તે 'શ્રી' ધર્મ છે.

જ્ઞાન—"विरह में गान करते" શ્રીઠાકુરજી ની લીલા ભાવના ના જ્ઞાન સહિત ગુણ ગાન તે અત્રે 'જ્ઞાન' ધર્મ છે.

વૈરાગ્ય—"लौकिक वैदिक सर्व त्याग करि लीला रस में मगन रहते ।" લીલા રસના અનુભવ પૂર્વક ભગવત્સુખાર્થ લૌકિક વૈદિક ધર્મોના ત્યાગ તે અત્રે 'વૈરાગ્ય' છે.

રૂક્મણીની વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષના 'ઐશ્વર્ય' ધર્મ રૂપ છે. એમાં શ્રીઠાકુરજી ની ઋતુ સમયાનુસાર સેવા કરવી તેમજ શ્રીઠાકુરજી ને પણ પોતાને અધીન કરવા તે બધુ પુષ્ટિ મોક્ષ ના ઐશ્વર્ય રૂપ છે. એનો વિસ્તાર પૂર્વે થઈ ગયો છે.

આ ભાગમાં કહેલાં ભગવત્સ્વરૂપો ની ઐતિહાસિક યાદી—

વાર્તા	સ્વરૂપોનાં નામ	કોનાં સેવ્ય	હાલ ક્યાં બિરાજે છે
૧/૯	શ્રીમદનમોહનજી	શ્રી મહાપ્રભુજીના	ગોકુલ
૪/૧૨	શ્રી નવનીતપ્રિયજી (રાજાઠાકોર)		,,
૫/૧૩	શ્રીમદનમોહનજી	,,	જામનગર
૬/૧૪	શ્રીબાલકૃષ્ણજી	,,	ગોકુલ
૭/૧૫	શ્રીનવનીતપ્રિય જી	,,	કોટા
૮/૧૬	શ્રીમથુરેશજી	,,	કાંકરોલી

વાર્તા સંખ્યા માં ઉપરની સંખ્યા આ ભાગના ક્રમને અનુસાર છે જ્યારે તેની નીચેનીજે સંખ્યા છે તે પ્રારંભ થી શરુ કરેલ સંખ્યા ને અનુસાર છે. પ્રથમ ભાગમાં ૮ વાર્તાઓ છે. (દ્વિતીય ભાગ ની અષ્ટસખાની વાર્તા ઓ ની પ્રારંભિક

સૂરદાસાદિ ચાર સખાઓ ની વાર્તાઓની ગણત્રી ચોરાસી વાર્તાઓની અન્તિમ સંખ્યા ૮૧, ૮૨, ૮૩, અને ૮૪એમ છે.)

વાર્તા સંખ્યા૬/૧૪માં શ્રીઠાકુરજીનું નામ પ્રાપ્ત નથી છતાં 'સેવ્ય સ્વરૂપોની વાર્તા' માં હોવા થી અત્રે તેને આપેલ છે.

આ શ્રી ઠાકુર જી શ્રીમહાપ્રભુજી ના સમય માંજ મહાવન થી ગોકુલ પધારી ગયા હતા. ત્યાર થી અદ્યાપિ શ્રીમહાપ્રભુજીના વંશમાંજવરાજે છે.

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीनाथदेव कृता

संस्कृत वार्ता-मणिमाला *

—:(॥०॥):—

वार्ता ६

(पुरुषोत्तम दास चौपड़ा काशी)

अथ कश्चिच्चौपडाख्यः पुरुषोत्तमदासकः ॥
वाराणस्यां क्षत्रश्रेष्ठस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥ ५२१ ॥
श्रीमदाचार्यवर्य्याणां शरणं, स्वसमर्पणी ॥
श्रीकृष्णनाम सर्वेभ्योऽश्रावयत्तदनुज्ञया ॥ ५२२ ॥
भवति स्म सदा गेहे यः श्रीमदन मोहनम् ॥
राजसेवा-संविधाभिः प्रभुं संपत्समन्वितः ॥ ५२३ ॥
द्विपञ्चाशद्घटिकान् स्म यश्च स्वप्रभवे सदा ॥
समर्पयति पक्वान्न-राजभोगोत्तरं मुदा ॥ ५२४ ॥
विश्वेश्वरमहादेव-दर्शनार्थमपि क्वाचित् ॥
न गतः स्वप्रभोः सेवा-कर्मण्यनवकाशतः ॥ ५२५ ॥
एवं संभजतस्तस्य कालो बहुतरो गतः ॥
एकदा विश्वनाथेन रुद्रेण स्वप्न ईरितम् ॥ ५२६ ॥
"पुरुषोत्तमदासावामेकग्राम—निवासिनौ ॥
तत्रापि वैष्णवत्वाख्य--सम्बन्धं तु पुरस्कुरु ॥ ५२७ ॥

---

* इसकी प्रथम ८ वार्ताएं प्रथम भाग में प्रकाशित की जा चुकी हैं।

यत्स्वप्रभोः सुप्रसादं देहि स्वल्पमपि क्वचित्" ॥
इत्याश्रुत्योत्थितः प्रातः स्नात्वा सेवां समाचरत् ॥ ५२८ ॥
राजभोगारार्त्तिकां तां कृत्वाथ बहिरास्थितः ॥
परिधाय स्ववासांसि हस्तयोस्तत्प्रसादितान् ॥ ५२९ ॥
बीटकाँश्चतुरो धृत्वा पुरुषोत्तमदासकः ॥
विश्वेशदेव–निलयमभियाति स्म वैष्णवः ॥ ५३० ॥
अभियान्तं तमालोक्य लोका ग्राम-निवासिनः ॥
विस्मिता ऊचुरन्योन्य "अहो याति शिवालयम् ॥ ५३१ ॥
चित्रमेष क्वापि नाप्त" इति ते चलिताः समम् ॥
श्रेष्ठी देवालयं प्राप्तः पुरो विश्वेश्वरस्य, तान् ॥ ५३२ ॥
विधाय "जयश्रीकृष्णेति" ब्रुवन् पुनरागमत् ॥
तदा तत्र महाशैवविप्रैः पृष्ट "अहो त्वया ॥ ५३३ ॥
श्रेष्ठिन्नमस्कृतो नेशः कृष्णेत्युक्त्वा गतं, न सत्" ॥
तदाऽऽकर्ण्य श्रेष्ठिनोक्तं "पृष्टव्यः स हि वोऽधुना ॥ ५३४ ॥
विश्वनाथो महादेवो वक्ष्यतीति' न संशयः ॥
निश्येको विश्वनाथस्य कृपापात्रं द्विजोत्तमः ॥ ५३५ ॥
तस्य स्वप्ने शिवेनोक्तं "पुरुषोत्तमदासकः ॥
महाभागवतो भक्तस्तेतस्मादर्थितं मया ॥ ५३६ ॥
प्रभोर्महाप्रसादाख्यं वस्तु तद्दातुमागतः ॥
व्यवहारश्च मेऽनेन श्रीकृष्ण- स्मरणात्मकः ॥ ५३७ ॥
अस्मिन् किमपि नो वाच्यमसाधु भवदादिभिः ॥
इत्याकर्ण्य स्वप्नवृत्तं तेन सर्वत्र वेदितम् ॥ ५३८ ॥

श्रुतवद्भिः शैवविप्रैः संशयो ह्यपाकृतः ॥
ततः स्म तेन पुरुषोत्तमदासेन वै प्रभोः ॥ ५३९ ॥
महामहोत्सव - महाप्रसादान्नं निवेद्यते ॥
एकदा विश्वनाथेन काल भैरव सन्निधौ ॥ ५४० ॥
प्रोक्तं "भो! वक्तुमायाति पुरुषोत्तमदासकः ॥
अतिकालेन स्वगृह मित्यस्य पृ—षद्गणाः,, ॥ ५४१ ॥
रक्षां विधेहि सततं बहिः स्थित्वेति" सोऽकरोत् ॥
कदाचिदपि वेलायामेकाकी स निशीथके ॥ ५४२ ॥
आगतो वैष्णव गृहात्पुरुषोत्तमदासकः ॥
दृष्ट्वानुयान्तमारात्तं काल भैरव रूपिणम् ॥ ५४३ ॥
स्वगृह द्वारपर्यन्तमेकतः शनकैः स्थितम् ॥
पृष्टवान्निर्भयः कोऽसि तदा स प्रोक्तवान् गणः ॥ ५४४ ॥
काल भैरव नामाहं श्रेष्ठिन् ? विश्वेश्वरस्य हि ॥
आज्ञया रक्षिता तेऽस्मि योजितः परिषद्गणः ॥ ५४५ ॥
इति श्रुत्वा वैष्णवाग्र्यः पुरुषोत्तमदासकः ॥
कपाटिकां पिधायान्तर्गतो गेहे मुमोद ह ॥ ५४६ ॥

इति श्रीवैष्णववार्तामालायां नवमो मणिः

वार्ता १०

अथैको दक्षिणादिशः शैवो विप्रः समागतः ॥
वाराणस्यां कृपापात्रं विश्वेशस्य बुधोऽवसत् ॥ ५४७ ॥

दृष्ट्वा तु विश्वनाथं स पिबति स्म जलं सदा ॥
नोचेदुपवसेत्क्वापि परमेष्ट शिवेक्षणः ॥ ५४८ ॥
स इत्थमेकदा कृष्ण- जन्माष्टम्यामहर्निशम् ॥
उपोषितो विचिन्वन्स विश्वेशं न व्यलोकयत् ॥ ५४९ ॥
प्राप्तं नवम्यां मध्यान्हे पश्यन् विप्रो जगाद तम् ॥
"पूर्वेद्युरद्य मध्यान्हमालये तव दर्शनम् ॥ ५५० ॥
भगवन्न मया प्राप्तमत्र को हेतु रुच्यताम्" ॥
तदा विश्वेश्वरेणोक्तं "द्रष्टुं जन्माष्टमी- सुखम् ॥ ५५१ ॥
पुरुषोत्तमदासस्य गतोऽहं श्रेष्ठिनो गृहे ॥
विसर्जितोऽधुना यामि दधि -कर्दम संप्लुतः" ॥ ५५२ ॥
तदाऽऽकर्ण्य द्विजेनोक्तं "भगवन! धूर्जटे! स कः? ॥
पुरुषोत्तमदासाख्यो यद्गृहे भगवानगात्" ॥ ५५३ ॥
तदा विश्वेश्वरेणोक्तं "विप्र"! स क्षत्रियोत्तमः ॥
महाभागवतः श्रीमान्" इत्याकर्ण्यान्वयुंक्त सः ॥ ५५४ ॥
अहो "एवं विधाः सन्ति महाभागवता मुदा ॥
अभियन्ति गृहान्येषामीशा अपि भवादृशाः" ॥ ५५५ ॥
तन्निशम्योक्तमीशेन ब्रह्मन्! भागवतास्तथा ॥
महान्तः सर्वसुहृदः करुणा विश्वपावनाः ॥ ५५६ ॥
तदभिप्रायमाकर्ण्य विप्रेणोक्तं विभोः पुरः ॥
"एवं चेत्तर्हि भगवद्भक्तं कुर्विह मामपि" ॥ ५५७ ॥
तदा विश्वेश्वरेणोक्तं "यद्येवं तर्ह्यवाप्नुहि ॥
पुरुषोत्तमदासस्य निकटे कृष्णनाम तत्" ॥ ५५८ ॥

तदा प्रोक्तं पुन र्विप्र-वर्येण "भगवन् ? भवान् ॥
कृष्णनामोपदिशतु मह्यमेवेह सर्वथा" ॥ ५५९ ॥
तदाऽऽश्रुत्योक्तमीशेन "द्विजाकर्णय तत्वतः ॥
प्रायोपदिष्टं ते कृष्णनाम नेह फलिष्यति ॥ ५६० ॥
एतन्मार्गाचार्यवर्यत्वाऽ भावादिति मे मतिः" ॥
इत्याकर्ण्य ज्ञातहार्दोऽथ विप्रो

गत्वा द्वारे श्रेष्ठिनोऽ तिष्ठदेकः ॥

केनाप्यारात्स्वागमं सेवकेन—

सोन्तःस्थस्याऽऽवेदयद्वैष्णवस्य ॥ ५६१ ॥

श्रुत्वा प्रोक्तं श्रेष्ठिना भृत्यवर्ग !

सम्यक् स्थाने वेष्यतां ब्राह्मणः सः ॥

प्रायः प्राप्तो मां विवादेप्सुरेव—

कर्त्ता शून्यं मस्तकं शुष्क तर्कैः ॥ ५६२ ॥

तदनु स्वयमेवाप्तः सेवातो लब्ध सत्क्षणः ॥
बहिः सदस्युपासीनमेकं विप्रं ददर्श सः ॥ ५६३ ॥
ब्राह्मणः सहसोत्थाय ववन्दे दंडवंन्मुदा ॥
दृष्ट्वा तमाह स श्रेष्ठी "हा हा तेऽनुचितं कृतम् ॥ ५६४ ॥
वयं हि क्षत्रिया जात्या, यूयं पूज्या द्विजोत्तमाः' ॥
तदा विप्रेणोक्त"महो देयं श्रीकृष्णनाम मे" ॥ ५६५ ॥
श्रेष्ठिनोक्तं कथं यूय मुपदेश्या मयाऽऽर्यकाः ॥
पुनर्विप्रेणोक्तमिति "देयं श्रीकृष्णनाम मे" ॥ ५६६ ॥

भूयः कृतेऽप्याग्रहे तन्नोद्दिष्टं श्रेष्ठिना तदा ॥
तदा ततः परावृत्य गतो विश्वेश्वरं प्रति ॥ ५६७ ॥
उक्तवान् "राति नो नाम स श्रेष्ठीति करोमि किम्" ॥
तदाकर्ण्योक्तमीशेन "याहि भूयो मयेर्पितः ॥ ५६८ ॥
मे नाम गृह्णन्सदनं प्रेषितोऽस्मीति शंभुना" ॥
तन्निशम्य पुनर्विप्रः श्रेष्ठिनो गतवान् गृहे ॥ ५६९ ॥
पुरुषोत्तमदासाख्य ! श्रेष्ठिन्नद्यागतोऽस्म्यहम् ॥
आज्ञया विश्वनाथस्य भूयो वाराणसी- पतेः ॥ ५७० ॥
विश्वेश्वरेणेत्थमुक्तमपि 'श्रेष्ठिन् ! द्विजन्मनः ॥
कर्णे सव्ये श्रावयतु कृष्ण नामास्य पारकम्' ॥ ५७१ ॥
तदभिप्रायमालोच्य सर्वं श्रेष्ठी द्विजन्मनः ॥
श्रावयामास वै श्रोत्रे कृष्णनामास्य पारकम् ॥ ५७२ ॥
"शरणं मम श्रीकृष्ण" इत्यूचेऽञ्जलि- बन्धतः ॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्रणतस्तस्य वै पुरः ॥ ५७३ ॥
तदोक्तं तेन विप्रेण किमिदं क्रियतेऽधुना ॥
प्रणतिश्च कथं युक्ता ममेति विनिरूप्यताम् ॥ ५७४ ॥
तदोक्तं श्रेष्ठिना विप्र! वैष्णवोऽसीति वै मया ॥
वंदनीयपदाचार्याः सन्तीशा आवयोरिह ॥ ५७५ ॥
तेषामनुज्ञयैवेह कृष्णनाम दिशामि तत् ॥
इत्यावेऽऽदित हार्देन श्रेष्ठिना क्षत्रियेण सः ॥ ५७६ ॥
ज्ञापितो वल्लभाचार्य—पादानां निकटे गतः ॥
निवेदितात्मवृत्तान्तो भूयो- नामासवाँस्ततः ॥ ५७७ ॥

कियद्दिनावधि स्थित्वा श्रीमदाचार्य—सन्निधौ ॥
अधीत्य बहुशो ग्रन्थान्पुनर्देशं निजं ययौ ॥ ५७८ ॥
इति श्रीमद् वैष्णव वार्ता- मालायां दशमो मणिः

——00——

वार्ता ११

निर्झारखण्डे पापघ्नो मंदारो नाम पर्वतः ॥
ततः पतेच्चेन्मनुजो व्यथते न कदापि च ॥ ५७९ ॥
अवन् तत्प्रकृतं पापं सकामश्चेत्ततः पतेत् ॥
देहं त्यक्त्वा स वै मर्त्योऽभीप्सितं काममाप्नुयात् ॥ ५८० ॥
नित्यं संनिहितो यत्र मन्दिरे मधुसूदनः ॥
तद्दर्शनार्थमाचार्याः प्राप्तास्तत्र पुरा स्वयम् ॥ ५८१ ॥
तत्र द्रष्टुं गतौ तौ द्वौ श्रीमदाचार्य—सेवकौ ॥
पुरुषोत्तमदासः स कोऽपि वर्णी तथा द्विजः ॥ ५८२ ॥
मधुसूदनदेवं तौ दृष्ट्वागन्तुं समुत्सुकौ ॥
अधः परित्यक्तजनौ तुङ्गमासेदतुर्गिरिम् ॥ ५८३ ॥
मधुसूदन—वासं तमरण्ये पश्यतोस्तयोः ॥
तमिस्रायामपदवी मतीव भ्रममाणयोः ॥ ५८४ ॥
तदा सुप्तौ गिरौ नक्तं पर्यायेण च निर्जने ॥
विलोक्यैकः समायातः सिद्धोऽपृच्छत्प्रबोधयन् ॥ ५८५ ॥
कौ युवामिह संप्राप्तौ कुतो वेति तदा तयोः ॥
स एको ब्रह्मचार्यूचे" विद्धि नौ वैष्णवौ सुरः ॥ ५८६ ॥

श्रीवल्लभाचार्यविभोः सेवकौ, दर्शनार्थिनौ" ॥
तदाऽऽकर्ण्योवाच सिद्धो "रे! मर्त्यः कोपि नात्र हि ॥ ५८७ ॥
वसते किमुनानास्यां व्याघ्रादेरपि यद्भयम्" ॥
तदोक्तं वर्णिना 'सिद्ध ! सांप्रतं तु स्थितं गिरौ ॥ ५८८ ॥
निर्भयं तद्वचः श्रुत्वा सिद्धेनोक्तं द्विजन्मने ॥
'रे ममास्ते मणिः पार्श्वे तं ददामि गृहाण मे' ॥ ५८९ ॥
तदा पृष्टं वर्णिना भो! मणिः किं कार्य–साधकः ॥
तदा सिद्धेनोक्त मिति यदर्थेत्तद्ददाति सः ॥ ५९० ॥
तदाऽऽकर्ण्य द्विजेनोक्तं तर्हि तं कामये न हि ॥
ब्राह्मणोऽहं विरक्तश्च ब्रह्मचारी सदाऽनघ ! ॥ ५९१ ॥
यो मे पार्श्वे स्वपित्यास्ते क्षत्रियोऽस्मै प्रदेहि तम् ॥
तदा सिद्धेनोक्तमिति प्रतिबोधय तर्हि तम् ॥ ५९२ ॥
बाढमित्यभ्युपेत्यैव वर्णिना सः प्रबोधितः ॥
उक्तश्च भो! गृहाणेमं मणि बाहुजसद्वरं (?) ॥ ५९३ ॥
तदाऽऽकर्ण्य श्रेष्ठिनोक्तं मणिः किं कार्य–साधकः ॥
तदा सिद्धेन तस्याग्रे प्रभावः कथितो मणेः ॥ ५९४ ॥
तदाऽऽश्रुत्य श्रेष्ठिनोक्तं तर्हि गृह्णामि नो मणिम् ॥
श्रेष्ठिनोक्तं ब्रह्मचारिन्! गृह्णासि न कथं मणिम् ॥ ५९५ ॥
तदोक्तं वर्णिना श्रेष्ठिन् ! विरक्तोऽस्मि न संग्रही ॥
पिष्टं प्रस्थमितं नित्यं जगदीशो ददाति मे ॥ ५९६ ॥
बहुलं भवताऽपेक्ष्यं गृहस्थस्य कुटुम्बिनः ॥
ततो ग्राह्यो मणिश्चेति क्रिया समभिहारतः ॥ ५९७ ॥

तदोक्तं श्रेष्ठिना ब्रह्मन् ! जगदीशो ददाति यत् ॥
तुभ्यं प्रस्थमितं दाता, दशप्रस्थमितं स मे ॥ ५९८ ॥
तस्य का न्यूनता दाने भाण्डा विश्वंभर प्रभोः ! ॥
त्यक्त्वा तदाश्रयं किं वा कुर्यामस्य मणेरिति" ॥ ५९९ ॥
उक्तौ जगृहतुर्नोभौ यदा सिद्धोऽगमत्तदा ॥
ततोऽवरुह्य तौ प्रातः संवृतौ स्वानुजीविभिः ॥ ६०० ॥
मध्येमार्गं विहसता वर्णिना श्रेष्ठिसंज्ञिना ॥
पुनरुक्तमहो "श्रेष्ठिन्" ! कथं नात्तो मणि स्त्वया ॥ ६०१ ॥
गृहस्थोहि भवान् धुर्यः कुटुम्बी व्यवहारवान् ॥
सेवाभारः शीर्ष्णि तवेत्युचितो मणि-संग्रहः" ॥ ६०२ ॥
तदोक्तं श्रेष्ठिना हं हो ! ब्रह्मन् ! विकलभाषण ! ॥
किंस्वाचार्याश्रयं त्यक्त्वा गृह्णीयां तन्मणेरहम् ॥ ६०३ ॥
नेत्थं वाच्यं वैष्णवेन वैष्णवस्य पुरोमम ॥
इति संवदमानौ तावयितुः स्वस्वमाश्रमम् ॥ ६०४ ॥
इतिश्रीवैष्णववार्तामालायामेकादशो मणिः ॥ ११ ॥

वार्ता १२

यदा कदाचित् स्मा ऽऽयान्ति वल्लभाचार्य दीक्षिताः ॥
पुरुषोत्तमदासस्य तदा मन्दिरमास्थिताः ॥ ६०५ ॥
कुर्वन्तिस्म स्वगृहवत्तस्य सेवां प्रभोर्मुदा ॥
पञ्चामृतेन विधिवत् स्नापयित्वा प्रसाद्य च ॥ ६०६ ॥
भोगं समर्पयन्तिस्म बुभुजुस्तदनन्तरम् ॥
तद्दामोदरदासेन दृष्ट्वा पृष्टं तदाद्भुतम् ॥ ६०७ ॥
"भो महाराजाधिराज ! भवद्भिः किमिदं कृतम् ॥
पञ्चामृतैः स्नापयित्वार्पितंयन्मे पुरः प्रभोः ॥ ६०८ ॥
पश्चात् तद् भुक्तमित्यत्र संशयोमेनिवार्यताम् " ॥
तदाऽऽकर्ण्योक्तमाचार्यैं भो दामोदरदासकः ॥ ६०९ ॥
यद्यप्यनेन पुरुषोत्तमदासेन दीयते ॥
श्रीकृष्णनामाज्ञया मे तथापीह मया श्रुतेः ॥ ६१० ॥
मर्यादा रक्षितव्येति लोकसंग्रह कारणात्" ॥
इत्याकर्ण्य स गंभीरमाचार्याणां वचो महत् ॥ ६११ ॥
तद्दामोदरदासोपि निःसंदेहोऽभवत् क्षणात् ॥
पुरुषोत्तमदासस्य तस्य वै श्रेष्ठिनः सती ॥ ६१२ ॥
दुहिता रुक्मिणी नाम्नी तस्यवार्ता निरूप्यते ॥
एकदा श्रीमदाचार्याः श्रीमद्गोस्वामिनस्तथा ॥ ६१३ ॥
वाराणस्यां संवसन्तो गङ्गायां स्नातुमागमन् ॥

ग्रह-पर्वणि संकीर्णे तीर्थे सन्मणिकर्णिके ॥ ६१४ ॥
तदा स्नातुमिता पूर्वं स्नापयित्वा गृहे प्रभुम् ॥
रुक्मिणी चिंतिताचार्य—गोस्वामि स्नानदर्शना ॥ ६१५ ॥
दृष्ट्वा प्रत्यभिजानन्तः श्रीगोस्वामि महाशयाः ॥
आहूयाग्रे पृष्टवन्तो गङ्गायां रुक्मिणीं स्वयम् ॥ ६१६ ॥
कियद्वर्षोत्तरं स्नातुमायातासीह पर्वणि ॥
तदाचे रुक्मिणी राजपूज्या अयां किमीहितं ॥ ६१७ ॥
गंगायां स्नातु माशासे चतुर्विंशत्समोत्तरम् ॥
श्रुत्वेति श्रीमदाचार्यसूनु गोस्वामिनस्तदा ॥ ६१८ ॥
विक्लिन्न हृदयाः प्रोचु "रहो पश्यत ! पश्यत !! ॥
सेवायां परिचर्यायां यस्याः सक्तात्मनोनिशम् ॥ ६१९ ॥
अवकाशः क्वापिनाभूद्गङ्गायां स्नातुमप्यणुः ॥
धन्या भगवदीयेयं रुक्मिणी श्रीप्रभुप्रिया ॥ ७१९ ॥ ६२० ॥
श्रीमदाचार्य- कृपयेत्युक्त्वा तुष्टाः प्रतुष्टुवुः ॥
स्नात्वाते विधिवत् पूर्वं पश्चादपि महाशयाः ॥ ६२१ ॥
समायाता गृहंस्वायं रुक्मिणी चापि सत्वरम् ॥
जनामाघोर्ज्जे वैशाखे कुर्वन्ति स्नानमन्वहं ॥ ६२२ ॥
दानं नियमतः पूजां विष्णोर्वै वैष्णवा इति ॥
आलक्ष्योक्तवती तातं रुक्मणी पुरुषोत्तमम् ॥ ६२३ ॥
कुर्यांभोः कार्तिक स्नानं प्रातर्यद्यनु मन्यसे ॥
श्रुत्वेति सोऽपि पुरुषोत्तमोवाच उवाच ताम् ॥ ६२४ ॥

वाढं कुरु स्नानमूज्ज तद् गृहाण यदिच्छसि" ॥
तदाऽऽकर्ण्य तया प्रोक्त" मेवं चेहीयतामिह ॥ ६२५ ॥
यदृच्छया समासाद्य पिष्ट सा राज्यशर्करं ॥
तदा श्रुत्यैव पुरुषोत्तमदासेन हर्षतः ॥ ६२६ ॥
घृतं सशर्करं तस्याः स्थापितं बहुलं पुरः ॥
गोधूम चणकौ (वापि?) पिष्टाकार गृहेस्थितम् ॥ ६२७
गृहीत्वा मुदिता प्रासे कार्तिक मासि सान्वहम् ॥
उत्थायापररात्रान्ते शुचिः स्नात्वाऽथ मंदिरे ॥ ६२८
प्रबोधितस्य स्वामिनो राजभोगावधि स्वयम् ॥
भोगार्थं नव्यपक्वान्न सामग्रीं विविधा मुदा ॥ ६२९
चतुरा रचयद्भक्त्यार्पयति स्म स्व हस्ततः ॥
कृत्वा स्नानोत्थापनेऽपि सामग्रीमार्पयन्नवाम् ॥ ६३
नित्यं शयन पर्यन्तमित्थं नियममास्थिता ॥
कार्तिके सा तथा माघ वैशाख मासि पावन ॥ ६३१
एकदा श्रेष्ठिनो पृष्टा : भोभो रुक्मिणि ! पुत्रिके ॥
नदृश्यसे गता स्नातुं गंगा तीर्थे मया कदाचित् ॥ ६३२
कीदृक् ते कार्तिकस्नानं सत्यं कथय मा मृषा ॥
तदाऽऽकर्ण्योवाच सत्यं रुक्मिणी पितरं प्रति ॥ ६३३
बहिः स्नानेन तीर्थेपि कः कामो मे विशिष्यते ॥
इत्थमेव स्नामि सदा पावने कार्तिकादिके ॥ ६३४
अत्रान्तर्भोगसेवायां यत्रिः स्नाता प्रभोऽरिति ॥
श्रुत्वैतद्बहु संतुष्टः श्रेष्ठी तस्या वचो महत् ॥ ६३५

भजन्तो (?) गोस्वामिपादा दृष्ट्वाकर्ह्यपि रुक्मिणीम्
आहुः स्माहो प्रीतिबद्धो वत्सलायाः कदाऽनृणः ॥ ६३६
रुक्मिण्या भवितै तस्या यशोदा वत्सलो हरिं ॥
एवं कियद्दिनान्ते सा शरीरेणाऽक्षमावदत् ॥ ६३७
" अाः कथंचिदयं देहः पतेद्भद्रं तदा भवेत् " ॥
इत्येवं चिंतयन्त्यास्तु रुक्मिण्याः सहरीच्छया ॥ ६३८ ॥
दहः पपात निर्मुक्त इत्यशेषजनैः श्रुतम् ॥
उक्तं सद्भिः क्वचिच्छ्रीमद्गोस्वामि निकटे गतैः ॥ ६३९ ॥
महाराजा ! सेविकया भवतां श्रीप्रभु जुषा ॥
रुक्मिण्या सा तया गंङ्गेत्याकर्ण्योक्तं तदार्यकैः ॥ ६४० ॥
नैवं वाच्यं वाच्यमित्थं गंगया सेवि रुक्मिणी ॥
नित्याङ्गसङ्गिनी विष्णोः सकृदेकाङ्गसङ्गया ॥ ६४१ ॥
इतिपश्य प्रभुप्रीतिसेवाकर्मादिकान् गुणान् ॥
कीर्तयन्तिस्म गोस्वामिपादाः सा रुक्मिणीत्य भूत् ॥ ६४२ ॥

इति श्रीमद्वैष्णववार्तामालायां द्वादशा मणिः

———०———

वार्ता १३

(रामदास सारस्वत ब्राह्मणः)

अथ कश्चिद्रामदासो विप्रः सारस्वतो महान् ॥
भजातिस्म प्रभुं प्रीत्या श्रीमदाचार्यसेवकः ॥ ६४३ ॥
अस्पर्शतः स्म कुरुते सर्वकार्यं तथात्मनः ॥
चीटकानुपयुक्तस्म नीरं चास्पर्शयोगतः ॥ ६४४ ॥
एवं वै वर्तमानस्य संपन्नस्य सदा स्वतः ॥
चिरं स्थितस्य स्वगृहे द्रव्यं व्ययमितं बहु ॥ ६४५ ॥
यत्किञ्चन स्थितं गेहे तदा लक्ष्य व्यचिंतयत् ॥
आयः स्यादवशिष्टेन यथैतेन तथा मया ॥ ६४६ ॥
कार्यमित्यन्यथा सेवा निर्वाहः संभवेत्कथम् ॥
तदोपतत्वतुवाय- लोकेषु द्रव्यमात्मनः ॥ ६४७ ॥
व्यवहारानुसारेण प्रादान्मूल विवृद्धये ॥
तथा कृते तत् द्रव्यस्य वृद्धिद्रव्यं समागमत् ॥ ६४८ ॥
स्वगृहे बहु लोभेन तान्तवैर्व्यवहारतः ।
पूर्वदेशे पट्टवस्त्र वायकास्तान्तवा इति ॥ ६४९ ॥
ख्यातास्तेष्वेकदा प्रोक्तं रामदासेन भो जनाः ॥
यदा मेऽभीप्सितं नेतुं तद् गृहीष्येधनं स्वकम् ॥ ६५० ॥
इति भाषा बंधनेन निश्चिन्तस्य च सर्वदा ॥
रामदासस्य सेव्यं स्वं प्रभुं संसेवतो मुदा ॥ ६५१ ॥
नवनीतरवं साक्षादाचार्यं विनिवेदितम् ॥

कालोऽत्यगात् बहुतरः स्वप्नेजातु प्रभुः स्वयम् ॥ ६५२ ॥
सेवकं श्रीरामदासं प्रत्यूचेऽकिमहं त्वया ॥
रचितस्तन्तुवायेषु वृध्यर्थमितभोग भुक् ॥ ६५३ ॥
तदाकर्ण्यैव चकितो रामदासो बभूवह ॥
प्रातरुत्थाय स गतस्तन्तुवायजनान्प्रेति ॥ ६५४ ॥
उवाच "भो ! मे तत् द्रव्यं समर्पयत सर्वशः" ॥
तदातैरुक्त"मेतात्किं कारणं सर्वमर्थ्यते" ॥ ६५५ ॥
तदोक्तं रामदासेन ऽ कार्यमापतितं मया ॥
बालस्य हठिनस्तस्य मनोरञ्जनमिष्यते ॥ ६५६ ॥
तदाऽऽकर्ण्याशु तैस्तन्तु-वायकैः सर्वमाहृतम् ॥
तद् द्रव्यं स समादाय स्वगृहे संन्येवशयत् ॥ ६५७ ॥
भूयस्तथैव सविभोर्नित्यं सेवा समाचरत् ॥
एवं कृते व्ययमितं तत् द्रव्यं सर्वमेवाहि ॥ ६५८ ॥
तदाऽऽलच्य स्वयं पश्चाद्रामदासः स सेवकः ॥
कस्यचिद्वणिजो हट्टादानिन्ये तद् ऋणीकृतम् ॥ ६५९ ॥
धान्यादिकं नित्यमिति संभूतं श्रीर्णि तदृणम् ॥
आलक्ष्य तत्याज ततस्तदाऽऽहरणं मन्यतः ॥ ६६० ॥
कृतवान् वणिजः पूर्वतनस्याग्रेप्य सञ्चरन् ॥
कदाचित्पूर्वतनेनाग्रे रामदासं प्रतीरितम् ॥ ६६१ ॥
"कथं भो ! रामदासेह हट्टाद्वस्तु न गृह्यते ॥
नचेदेवं तर्हिकृतं मदीयं दीयतामृणम् ॥ ६६२ ॥

भूयः प्रेरणा मासाद्य पीडयामास तं वणिक् ॥
तदैकदा प्रभुः साक्षाद्रामदास-वपुर्धरः ॥ ६६३ ॥
तस्यैव वणिजः प्रापद्विपणौ लिखतः स्वतः ॥
उक्त्वा "नानयस्वेति लेखपत्रं पुरोमम" ॥ ६६४ ॥
तेनानीतं लेखपत्रं दृष्ट्वा सव्यांच (?) लेखवित् ॥
सर्वं तद् द्रव्यमावेद्य भूयोमुद्राः शतंनिजाः ॥ ६६५ ॥
अधिकाश्चर्पयामास वणिजव्यवहारतः ॥
त्रे स्वहस्ताक्षराणि दत्वाऽऽलिख्यागमद् गृहम् ॥ ६६६ ॥
नैतद् वृत्तं रामदासो यथाविद्यात्तथा ऽ करोत् ॥
कदाचिद्वैष्णवाः केचित् उत्सवालोकनोद्यतम् ॥ ६६७ ॥
निमंत्रितं रामदासमानिन्युस्तेन वर्त्मना ॥
तस्यैव वणिजो ऽ भ्यर्णं वंचयित्वा दृशं शनैः ॥ ६६८ ॥
निराक्राम्यद्रामदासो देयर्णार्थिनशंकया ॥
तथायान्तं तमालोक्य दूरादेत्य स वै वणिक ॥ ६६९ ॥
उवाच " भो रामदास ? गृह्यते न ममापणात् ॥
यत्किंचिदपिवा वस्तुतद्भाग्यं ममेति हि ॥ ६७० ॥
तावत्त्वमनोधिकं द्रव्यं मपि न्यस्तं यदात्मना ॥
तत्तुनेयं व्ययार्थं ते श्रुत्वागाद" न्वियामिति ॥ ६७१ ॥
मध्येमार्गं प्रचलता रामदासेन चिंतितम् ॥
मयात्वस्मिन्ननिःक्षिप्तं द्रव्यं किमपि वै क्वचित् ॥ ६७२ ॥
वदत्यवमेयं किंचिदत्र कारणमस्त्यहो ॥

अतो वैष्णव लोकानां गृहे गत्वोत्सवं परम् ॥ ६७३ ॥
विलोक्य प्राणिपातेन, मध्येमार्गं वणिक् गृहात् ॥
रामदासेनोपहूत आनेयं लेखपत्रकम् ॥ ६७४ ॥
तत्रैव वाणिजा लेखपत्रं संदर्शितं पुरा ॥
उक्तंच " भो स्वाद्रनेदं हस्तेन लिखित दत्तम् ॥ ६७५ ॥
कथं विस्मर्यते वही पात्रिका च प्रदृश्यताम् ॥
दृष्ट्वा तद्रामदासेन श्रीशहस्ताक्षरं दत्तम् ६७६ ॥
तूष्णीं भूतो गृहं यातः स्त्रिया अग्रे न्यवेदयत् ॥
"अधुना तु गृहे स्थास्ये कुर्वे देशान्तरंगतः ॥ ६७७ ॥
कस्यचित् सेवया जीव्यां छात्रवृत्तिं विपद्गतः" ॥
इति निश्चित्य मनसा निष्क्रीतोऽश्वोऽथ तत्कृते ॥ ६७८ ॥
सर्वशस्त्राणि वा मार्गे बबन्धोष्णीष वेष्टनम् ॥
प्रसादि नीरताम्बूलान्यादद् स्पर्शितां त्यजन् ॥ ६७९ ॥
कियद्दिनानन्तरं सोऽप्यखिल ग्राममागतः ॥
श्रीमदाचार्यवर्याङ्घ्रि दर्शनार्थाय सज्जितः ॥ ६८० ॥
दण्डवत्प्रणतं दृष्ट्वा श्रीमदाचार्य दीक्षिताः ॥
तमूचु "धन्यधन्येति" रामदासं पुरः सताम् ॥ ६८१ ॥
तदाऽऽलक्ष्येरितं सद्भिः सेवकैरन्तिके स्थितैः ॥
कथमार्याः कथमथ धन्यमेव विधं ह्यमुम् ॥ ६८२ ॥
विहायास्पर्शिता धर्मं छात्रवृत्तिमुपाश्रितम् ॥
तन्निशम्योक्तमाचार्यैः — अयंधन्योऽस्त्यतःऽधुना ॥ ६८३ ॥

यत्र प्रभुं श्रमयति धीरो नैतादृशो परः ॥
इति स्वाचार्य-वाक्यं ते निर्व्यलीकं परं महत् ॥ ६८४ ॥
निशम्य वैष्णवाः सर्वे बभूवुर्हृत संशयाः ॥
एकदा श्रीमदाचार्याः स्नातुं गङ्गां यतो गताः ॥ ६८५ ॥
तत्र मार्गे गर्तमेकं वीक्ष्य प्रोचुर्यदृच्छया ॥
अहो न पूरितो गर्त्तो मध्ये मार्गं प्रयातुकः ॥ ६८६ ॥
इत्याचार्य मुखोद्गीर्णवचः श्रवण मात्रतः ॥
वैष्णवास्तत्क्षणात्सर्वे तं पूरयितु मुद्यताः ॥ ६८७ ॥
भूतास्ततोमृत् क्षेपार्थं गृहीत तृण-पत्रिका ॥
रामदासस्तु तं गर्त्तं पूरयामास सज्जितः ॥ ६८८ ॥
तावदाचार्यं चरणाः स्नात्वा तत्र समागताः ॥
पश्यन्तः पूरितं गर्त्तं रामदासेन तत्क्षणात् ॥ ६८९ ॥
तुष्यत्युद्योगिनि हरिरित्युक्त्वा तुष्टिमाभुवन् ॥
किञ्च श्रीरामदासस्य पुरः सन्तति वर्जितः ॥ ६९० ॥
पत्नी प्रोवाच "भो ! स्वामिन्नन्यां परिणयेति वै ॥
बालको भविता तस्या" मित्याकर्ण्य सचाब्रवीत् ॥ ६९१ ॥
"न ममेच्छा सुतस्येति" पुनरुक्तं तदाऽलिया ॥
"तर्हि मेतस्य वाँच्छेति श्रुत्वा भर्त्रेरितं पुनः ॥ ६९२ ॥
वाढं तवेच्छा यद्यस्ति तर्हि स्वस्य प्रभोर्मुदा ॥
नवनीतरतस्यास्य सेवां सूनोर्धिया कुरु ॥ ६९३ ॥
वस्त्रैरनेकैः पक्वान्नैराकल्पैः क्रीडनैरपि ॥

हरिं लालय सुप्रीत्या पुत्रस्ते भवितेतिवै" ॥ ६६४ ॥
इत्याश्रुत्य तथा तुष्टो नवनीतरतस्तया ॥
कालांतरेण जनितः पुत्रो वैष्णव एव तत् ॥ ६६५ ॥
एतादृक् रामदासोभूच्छ्रीमदाचार्य सेवकः ॥
महापुरुष संबंधी महापुरुष उत्तमः ॥ ६६६ ॥

इति श्रीमद् वैष्णव मालायां चतुर्दशोमणिः ॥

——(०)——

वार्ता १५

[गदाधरदास सारस्वत ब्राह्मण कड़ा मानिकपुर]

अथ सारस्वतो विप्रो गदाधरइति श्रुतः ॥
कडारमाणिकपुरे कन्याब्रह्मणातिरावसत् ॥ ६९७ ॥
श्रीमदाचार्यशरणः प्रभुं मदनमोहनम् ॥
बृहद्गौरस्वरूपं सं भजतिस्म सनिर्धनः ॥ ६९८ ॥
यजमानगृहात् किंचिद्यद्यथेयात्तथार्पयत् ॥
एकदा यजमानस्य वृत्तिलभ्यमपि चयात् (?) ॥ ६९९ ॥
नागतं किमपि स्वान्नं यत् प्रसाध्य समर्पयेत् ॥
तदागदाधरो बालभोग — मार्पयदंभसा ॥ ७१० ॥
श्रृंगार भोगमपिच वस्त्रपूतेन तेन हि ॥
राजभोगं जले नैव तथोत्थापन भोगकम् ॥ ७०१ ॥
शायनं च तथा कृत्वा दुःखितो मनसिस्वयम् ॥
सुप्तो संतप्त हृदयो निशीथार्द्धेगते ऽ थिकम् ॥ ७०२ ॥
तदैको यजमानोस्य द्वार्युच्चारितवान्वचः ॥
"कपाटोद्‌घाटनम् ब्रह्मन् ! कुरुत्व"मितिवै पुनः ॥ ७०३ ॥
श्रुतवान्स समुत्थाय कपाटोद्घाटमाकरोत ॥
यजमानोऽददान्मुद्राश्चतस्रो युगलां वरम् ॥ ७०४ ॥
द्वादशाहे पदं देयं तस्मै धातुजपात्रिका ।
सदक्षिणां पितृश्राद्धे प्रत्तो प्रति गृहाणमे ॥ ७०५ ॥

इत्यादाय सवस्त्रादि ग्रहमध्ये न्यवेशयत् ।
मुद्रां गृहीत्वा विपणे गतः चीरजमिष्टकम् ॥ ७०६ ॥
सद्यः केनापि कृतिना क्रियमाणमनर्पितम् ।
आकलय्य निरक्रीणात् गृहीत्वाऽऽशु ग्रहेनयत् ॥ ७०७ ॥
पुनःस्नात्वोत्थापिताय प्रभवे भोग मार्पयन् ।
तदैवाऽऽकारितेभ्यश्च वैष्णवेभ्योऽददाति तत् ॥ ७०८ ॥
प्रसादिभोगं सुस्वादुं बुभुजुस्तेप्यलौकिकम् ॥
स्वयं किमपितन्नाऽऽदत् पुनः सुप्तो निशि स्वयम् ॥ ७०६ ॥
प्रातः प्रबुद्ध उत्थाय विपणेरानय द्रुहु ।
आमान्नं घृतमिष्टादि तत्पाकं संविधाय च ॥ ७१० ॥
प्रभवे भोगमावेद्य वैष्णवां स्तानभोजयत् ।
तदासन्तो वैष्णवा स्ते प्रोचुस्तं वै गदाधरम् ॥ ७११ ॥
रात्रो प्रसादि यन्मिष्टं त्वमादत्तं प्रभोर्हिनः ।
भुक्तं सुस्वादु च यथा न तथैतत्कृतं कथम् ॥ ७१२ ॥
इति प्रष्टः सतानूचे प्रकारं तत्प्रसादजम् ॥
पुनःक्वचिद्भोजयितुं प्रसादान्नं निजप्रभोः ॥ ७१३ ॥
आमंत्रिता वैष्णवास्ते तद्गदाधर शर्म्मणा ॥
महानसेऽखिलं दृष्ट्वा शाकपत्रमनाहृतम् ॥ ७१४ ॥
उक्तं कंचित्प्रति "ह्यास्ते कोऽप्यत्रैतादृगप्यहो ? ॥
य आनयेच्छाकपत्र" मित्याकर्ण्याह कोप्यमुम ॥ ७१५ ॥
विषयी वैष्णवोऽभ्येत्य "हं" हो शाकमिहानये ॥

इत्युदीर्याऽऽपणात्सद्यो वास्तुकं शाकमानयत् ॥ ७१६ ॥
संस्कृत्य शाकं वास्तूकं दत्तवान्स महानसे ॥
सिद्धशाकं भोगमध्ये भुक्तवान् प्रभुरर्पितम् ॥ ७१७ ॥
तत्प्रसादाप्तशाकान्नं भुक्तवंतोऽथ वैष्णवाः ॥
स्तुवन्तः स्वादु संभूतं शाकम.वदय सोऽब्रवीत् ॥ ७१८ ॥
धन्यरे ! धन्य विपायिन (?) शाकभोजयितुः प्रभो ॥
विदुरस्येवहृदि ते हरौ भक्ति र्दृढास्त्विति ॥ ७१९ ॥
यदाशिषा वैष्णवाश्रयः सोऽभूदिति स वै महान् ॥

इति श्रीमद् वैष्णव वार्ता- मालायां पंचदशोमार्गः

वार्ता १६

(वेणीदास और माधवदास क्षत्रिय)

वेणीदासः क्षत्रियाख्यस्तथा माधवदासकः ॥
एतावास्तां भ्रातरौ हि तयोर्वार्ता ऽधुनोच्यते ॥ ७२० ॥
शाकानेता यः पुरोक्तः स वै माधवदासकः ॥
वेश्यायां विषयासक्तो वेशितायांस्वकेगृहे ॥ ७२१ ॥
निन्द्यमानो वैष्णवैः स्वैरेवं वृत्तोप्यजीगणत् ॥
नकांश्चिदप्याचार्याणामपि कर्णपथं गतः ॥ ७२२ ॥
प्रष्टोऽथ श्रीमदाचार्यैः क्वचिद् दृष्टि पथं गतः ॥
"कथंस्ववैष्णवगृहे त्वया वेश्या निवेशिता" ॥ ७२३ ॥
इत्याश्रुत्येरितं तेन "सत्यं प्रभो महाशयाः! ॥
अतिसक्तं मनस्तस्यामिति मे सा निवेशिता" ॥ ७२४ ॥
इत्यापृष्टः स तैर्वाचा त्रिरपीत्थं न्यवेदयत् ॥
श्रुत्वेति श्रीमदाचार्यै स्तूष्णीं भूतं नचेरितम् ॥ ७२५ ॥
तदोक्तं वैष्णवै "र्दयावधिसंकोच आहितः ॥
गतोस्तमधुनाग्रेऽपि हा पुरो वदतोऽस्य वः ॥ ७२६ ॥
श्रीमद्भिरस्मिन् किमपि नोक्तं वेश्यारतेपि च ॥
तदोक्तं श्रीमदाचार्यैरहो अस्य तथा मनः ॥ ७२७ ॥
प्रभोः परावर्तयितुं को विलम्बो भविष्यति ॥
इति प्रभुप्रसादाशीः परावर्तितचेतसः ॥ ७२८ ॥

तस्यमाधवदासस्य हरौ भक्तिर्दृढाऽभवेत् ॥
वेश्यानिःसारिता तेन गृहाच्छक्त्या महात्मनः ॥ ७२९ ॥
दृष्ट्वा माधवदासेन क्वचिन्मौक्तिकमालिका ॥
समीचीऽऽनापणे ऽनर्घ्या योग्येयं स्वप्रभोरिति ॥ ७३० ॥
रात्र्योक्तंस्वगृहे भ्रातुर्वेणीदासस्य वै पुरः ॥
क्रीत्वाविगृह्यतामेषा ऽपीच्या मौक्तिकमालिका ॥ ७३१ ॥
नवनीतरसे श्रीमत्कंठार्हेति पुनः पुनः ।
भ्रात्रोक्तं रोति विकलः स्वगृहे यद्विभूषणम् ॥ ७३२ ॥
वस्त्रं धान्यं धनं सर्वं प्रभोरेव किमेतया ॥
अस्माकं गृहिणामात्मजन्मो द्वाहधनार्थिनाम् ॥ ७३३ ॥
कत्थमित्थं घटतेति ज्ञात्वा वंचितमीहितः ॥
ऊचे माधवदासस्त्वद्धावितोऽस्मि पृथक् गृही ॥ ७३४ ॥
इत्युक्त्वा ऽभूत् पृथक् गेही विभज्य धनमात्मनः ॥
तद्रव्यानिष्क्रयं वस्तु गृहीत्वा दाक्षिणं गतः ॥ ७३५ ॥
तत्रवस्तु स विक्रीय व्यापारेण धनं बहु ॥
वर्द्धयामास , चानर्घ्यां काम्यां मौक्तिक मालिकाम्॥ ७३६ ॥
अप्युत्तमां प्राग् दृष्टाया गृहीत्वा स न्यवर्तत ॥
वर्त्मन्याप्तां नदीं तर्तुं संभृतं नावमास्थितम् ॥ ७३७ ॥
एकस्तत्कर्णधृग् भूत्वा नवनीतरतः स्वयम् ॥
करेलकुटिकां बिभ्रदुवाच बहुमापयन् ॥ ७३८ ॥
किमरे मज्जमेयं त्वां सनावं सपरिच्छदम् ॥

इतिमाधवदासस्तत् श्रुत्वोचे धैर्यमास्थितः ॥ ७३९ ॥
विवेकीति हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ॥
तदाकर्ण्य प्रभुः प्रोचे किमरे नेहमालिका ॥ ७४० ॥
मम मुक्तामणिमयीत्याकर्ण्यो चे स तं पुनः ॥
प्रभो ते संति भूयस्यः परं धर्मो न मादृशाम् ॥ ७४१ ॥
अनुद्यमः स्वामिसेवा साधने भूषणादिना ॥
सेवकस्य तु धर्मोयऽनुद्यमो भक्ति साधने ॥ ७४२ ॥
इत्याकर्ण्य स्वात्ममतं प्रभुणानौर्न मज्जिता ॥
इतस्ततः प्लाव्यमाना स्रवन्त्यां कलिता जनैः ॥ ७४३ ॥
अलचाबाद्भिर्वाप्यं तयोः संवदमानयोः ॥
वैपमानैर्नाविरूढै राश्चर्यं चकितैस्तदा ॥ ७४४ ॥
उक्तं वताहो ! धन्योऽस्य धर्मोनियमसंयमः ॥
यदयं तुष्टहृदयो हर्त्तीति विचिन्त्य तैः ॥ ७४५ ॥
आश्रितः समहान्सर्वैः कुशली पारमभ्यगात् ॥
ततः संभृतसंभारः सहितो ह्यचिरेण सः ॥ ७४६ ॥
स्वदेशमागतः प्रादान्मालां स्वाचार्यहस्तयोः ॥
दंडवत्प्रणतः पृष्टः श्रीमदाचार्यपण्डितैः ॥ ७४७ ॥
कथं रे प्लाव्यमाना नौ रक्षितेति निरूप्यताम् ॥
तदाऽऽकर्ण्य स तद् वृत्तं वर्णयामास तत्वतः ॥ ७४८ ॥
तदाश्रुत्योचुराचार्या वैष्णवानां पुरः सताम् ॥
सोयं माधवदासोऽत्र प्रत्याभिज्ञायतां बुधाः ॥ ७४९ ॥

॥ इति श्रीवैष्णववार्तामालायां षोडशो मणिः ॥

वार्ता १७

[अम्मा क्षत्राणी, कड़ा माणिकपुर]

कड़ार माणिकपुरे वासिन्येका महत्तया ॥
'अम्बा' नाम्नी क्षत्रियाणी श्रीमदाचार्यसेविका ॥ ७५० ॥
तस्या हरिं जुषः सूनुर्गादिमः कालतोमृतः ॥
इति दुःखेनातुरापि कुर्वन्ति हरिसेवनम् ॥ ७५१ ॥
निनायकालं क्लेशेन प्रातः स्नाता सदाशिशुम् ॥
कृष्णं प्रबुद्धं प्रसाद्य राजभोगं समर्प्य च ॥ ७५२ ॥
कृत्वानवसरं नित्यं बहिः स्थाने स्म रोदिति ॥
तत् श्रुत्वा बालकः कृष्णोऽभ्यन्तरे खेदमाप्तवान् ॥ ७५३ ॥
इत्थं नित्यं संरुदन्त्या द्वितीयोऽपि सुतो मृतः ॥
तद्वद्रोदीद्राजभोगोत्तरं पूर्ववदातुरा ॥ ७५४ ॥
प्रभुश्चासहमानस्तामुपेत्यावारयच्छिशुः ॥
अम्बमाक्रन्द खिन्नोहं भवामीत्यब्रुवन्मुहुः ॥ ७५५ ॥
तथापिरोदमानां 'ता' तथा वीक्ष्य सर्वं प्रभुः ॥
श्रीमदाचार्यसूनुश्रीगोस्वाम्यग्रे न्यवेदयत् ॥ ७५६ ।
अहो अम्बा विलपती त्यहमत्यन्तदुःखितः ॥
भवामि मा चिरं प्राज्ञा वर्जनीया प्रयत्नतः ॥ ७५७ ॥
तदाकर्ण्याथ गोस्वामिपादैराप्तैः समाहिता ॥
"अम्बमाक्रंद बालोयं श्रीकृष्णः स्वपतीति वै" ॥ ७५८ ॥

तदभिप्रेत्य साऽऽङ्कादादमंदात्सन्यवर्तत ॥ ७५६ ॥
अपुत्रावापुत्रमेव कृष्णमेकममन्यत ॥
नित्यं सेवार्थमुद्बुद्ध्वा प्रातः स्नाता स्वहस्तयोः ॥
सुगंधसारमालेप्य मन्दिरे जुजुषे प्रभुं ॥ ७६० ॥
मुदोस्याथ स्वहस्ताभ्यां प्रसाधित मिति क्वचित् ॥
अम्बा पात्रेऽर्प यित्वाऽऽप्रेपयस्तस्य गताबहिः ॥ ७६१ ॥
तस्यास्तत्समये प्राप्ता गोस्वामिप्रभवो गृहे ॥
आचार्यगतयस्तेऽन्तरपवार्य पटावृतिं ॥ ७६२ ॥
ददृशुस्तं बालकृष्णं पिबन्तं तत्पयोमुदा ॥
तावत्ततः परावृताः कृत्वा जवनिकां पुनः ॥ ७६३ ॥
इत्वा लक्ष्याम्बया पृष्टा कस्मादस्मान्महत्तमाः ॥
परावृता इति श्रुत्वाप्रोक्तं गोस्वामिभिस्तदा । ७६४ ॥
दृष्टः पयः पिबदन्नम्बे ! मयासेव्यस्तव प्रभुः ॥
तदाम्बयोक्तं भो बालः कृष्ण एष विलक्षणः ॥ ७६५ ॥
इति न ज्ञायते किं वा दृश्यतामिति ते पुनः ॥
दृष्ट्वाबालं तथा हृष्टाः परावृत्ता गृहं प्रति ॥ ७६६ ॥
अम्बां प्रत्युक्तवन्तश्च "हेम्बः वस्तदिदं पयः ॥
गृहे संप्रेषणीयंम" इत्या श्रुत्येरितं तया ॥ ७६७ ॥
" अत्रोपि भो भवानेव पाता वातत्र पीयताम् " ॥
इत्यावेदितहार्दा ते प्राप्ता निजगृहे मुदा ॥ ७६८ ॥

अथापितत्पयः सर्वं प्रेषयामास तद्गृहे ॥
पूर्णाभयस्वरूपज्ञा महापुरुषयोगतः ॥ ७६९ ॥
जनन्या इव यस्यावै वत्सलायाः प्रभुर्मुखन ॥
स्वेष्टमर्थयतीत्यामीत्मा ऽऽनुग्रहभाजनम् ॥ ७७० ॥

इति श्रीमद् वैष्णववार्ता मालायां सप्तदश वार्तामणिः
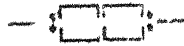
वार्ता १८

(हरिवंश सारस्वत ब्राह्मण काशी)

हरिवंशो द्विजः सारस्वतः स्वाचार्य-सेवकः ॥
काशीवासी पाठकोऽभूत्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥ ७७१ ॥
सकदाचित् पत्तनाख्ये देशे व्यापृतये गतः ॥
तत्रत्यकोटपालेन प्रीतिमाबवसच्चिरम् ॥ ७७२ ॥
कोट पालोऽस्य स गुणैः सत्यवादादिभिर्वशः ॥
स्वान्तर्व्यचिन्तयच्चैतद्यदयं निःस्पृहः सुहृत् ॥ ७७३ ॥
किञ्चिदप्यर्थयेन्मत्तस्तद्ददामि विचारयन् ॥
इत्येवं पत्तने सोऽपि कोटवालेन सम्मतः ॥ ७७४ ॥
चक्रे व्यापारममलं किमप्यर्थञ्च नार्थयत् ॥
मास फाल्गुनके पूर्वं दोलोत्सवदिन द्वयात् ॥ ७७५ ॥
हरिवंशस्य पुरतो व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥
स्वप्ने प्रोक्तं स्वसेव्येन संबोध्य प्रभुणा निशि ॥ ७७६ ॥
कथं रे ! नैष्यसि गृहे न मान्दोलयिष्यसि ॥
इत्युक्तमात्रे प्रोद्बुद्धो हृदि चिंतितवान्सुधीः ॥ ७७७ ॥
तदैवोत्थाय सदनं कोटपालस्य सोऽगमत ॥
दृष्ट्वा समागतं कोटपालो दूरात् समुत्सुकः ॥ ७७८
अवदत्किमहो मित्र प्राप्तः प्रार्थयितुमवान् ॥
तदोमित्यब्रवीत्सोऽपि नेयोऽहं मित्र ! सत्वरम् ॥ ७७९ ॥

अश्यां दिन द्वयाभ्यंतरीतिश्रुत्वा ऽभ्युपेयिवान् ॥
बाढमित्यश्व आरोप्य व्यसृजत्तं सहानुगैः ॥ ७८० ॥
तदाज्ञया प्रतिग्रामं सवर्त्मनि समारुहन् ॥
श्रान्तं श्रान्तं विसृज्याश्वं निशि गेहं समागमत् ॥ ७८१ ॥
प्रातः स्नातोऽथ दोलार्थं सामग्रीं संनिधाप्य सः ॥
प्रभुमान्दोलयामास दोलारूढं मुदान्वितः ॥ ७८२ ॥
कियद्दिनावधि गृहे स उषित्वा गृही पुनः ॥
पत्तनाख्यं पुरमगात् व्यापार - परि चिंतया ॥ ७८३ ॥
वतमागतं समालक्ष्य कोट पालेन तेन वै ॥
पृष्टं भोऽमित्र ! किं शीघ्रं समभूते चिकीर्षितम् ॥ ७८४ ॥
यदर्थं गतवानाशु मत्सकाशाद्दिनद्वयम् ॥
तदोक्तं हरिवंशेन "किमप्येताद्दगेव भोः ॥ ७८५ ॥
अवाच्यं समभूत्कार्यं यदर्थं गतवाद्य मे ॥
इत्युक्तो परतं तं वै कोटपालस्तथा मुदा ॥ ७८६ ॥
प्रीणयामास सवतं सोपितं स्वगुणैः सदा ॥
परं स्वमार्गीय वृत्तान्तं ना वेदयदमुष्य सः ॥ ७८७ ॥
श्रीमदाचार्यशख-रीतिज्ञोऽनधिकारतः ॥ ७८७½ ॥

॥ इति श्रीमद्वैष्णववार्तामालायामष्टादशोमणिः ॥

तत्र श्रीमथुरानाथ प्रभोः सेवां समाचरत् ॥
स्वचतुर्विंशतकं द्रव्यजं भोगमार्पयत् ॥ ७९७ ॥
तद्भोगीयप्रसादान्नं वैष्णवान्सम भोजयत् ॥
अभावे वैष्णवानां स गवामग्रे न्यवेदयत् ॥ ७९८ ॥
वानराणामग्रतश्च महावननिवासिनाम् ।
परंतद्देव भोगान्नमध्यात् किञ्चिदपि स्वयं ॥ ७९९ ॥
नादाद् गोविन्ददासाख्यः श्रोताधर्मपरायणयोः ॥
किंतु कृत्वा पृथग् लीटीः समर्प्याश्नातिनित्यशः ॥ ८०० ॥
एवं संसेवतस्तस्य धनं सर्वं व्ययं गतम ॥
ततोगतः श्रीनाथस्य गोवर्धनगिरौ प्रभोः ॥ ८०१ ॥
परिचर्यां चकारोच्चैर्मध्यान्हे पात्रमार्जनीम् ॥
रात्रेश्च पश्चिमे यामे साधिके स समुत्थितः ॥ ८०२ ॥
याति स्म नित्यं मथुरां प्रष्ठबद्धकमण्डलुः ॥
विश्रांतितीर्थतः स्नात्वा देवार्थं भृतभाजनम् ॥ ८०३ ॥
प्रागृःज भोगतो भ्येति पुनः सेवार्थमात्मनः ।
विधाय दर्शनं तस्य भूयः पात्राण्यमार्जयत् ॥ ८०४ ॥
महानसभुवं चापि मृदाक्षिप्य पुनः पुनः ॥
परिचर्यामात्मनीनां प्रभोरेव विधाय सः ॥ ८०५ ॥
गिरेर्योऽवतरति तिलकं संनिवर्त्य सन् ॥
तुलसीकाष्ठजां मालां मुत्तार्य निजकण्ठतः ॥ ८०६ ॥
गिरेः पार्श्वग्राममध्ये भिक्षार्थं याति नित्यदा ॥

आममन्नं स भिक्षित्वा चतुःपंचक शेटकम् ॥ ८०७ ॥
आहारमात्रं मिलितमायाति स्म पुनर्गृहम् ॥
पिष्टं विधाय तेनोंग्रारोटिकाः खीटिका कृता ॥ ८०८ ॥
प्राज्याः पक्वा दर्शयित्वालये श्रीशध्वजाग्रतः ॥
चरणामृतमाधाय कश्चिदन्तः प्रसादिताः ॥ ८०६ ॥
भुंक्ते स्म गोविन्ददास इति निर्वाहमाचरत् ॥
एवं निर्वाहतः सेवां कुर्वतो चिन्तयत् प्रभुः ॥ ८१० ॥
तस्य गोवर्धनाधीशो भावपत्रं समञ्जसं ॥
पुरोवदत्स्वाचार्याणामरिल्लग्रामवर्तिनाम् ॥ ८११ ॥
अहो मां खेदयत्येको भवदीयोऽत्रसेवकः ॥
तदाकर्ण्याखिलतः श्रीवल्लभाचार्यैर्दीक्षिताः ॥ ८१२ ॥
चलिता नातिचिरतो विश्रान्ता अग्रिमे पुरे ॥
सत्कृता वैष्णवैः प्रत्युद्गमनासनवासनैः ॥ ८१३ ॥
तदैव तत्र स्वाचार्याः प्रष्टवन्तः समाश्रितान् ॥
कथं रे! वैष्णवाः केन रोषितोऽस्मत्प्रभुर्गिरौ ॥ ८१४ ॥
तन्निशम्याश्रितैरुक्तं न नो विदितमण्वपि ॥
तदाकलय्य स्वाचार्या ततो मधुपुरीमिताः ॥ ८१५ ॥
तत्रस्था प्रष्टवन्तोऽपिनाप्नुवन्निश्चयं ततः ॥
चलिता गोपालपुरं श्रीद्वारं प्राविशँस्तदा ॥ ८१६ ॥
स्नात्वा श्रीवल्लभाचार्यारूढा गोवर्धनोपरि ॥
स्पृष्ट्वा कपोलौ श्रीशस्य स्वपाणिभ्यां तमब्रुवन् ॥ ८१७ ॥

गोवर्धनाधीश तातः! विमनस्कोसि हा कुतः? ॥
तदा गोवर्द्धनभृता प्रोक्तं श्रीशेन खिद्यता ॥ ८१८ ॥
"तात श्रीवल्लभाचार्याः शृणुनेदमिहान्वहम् ॥
भवदीयः कश्चिदेको मां खेदयति सेवकः ॥ ८१९ ॥
अथाप्रच्छंस्तदा श्रुत्वाचार्या आहूय सेवकान् ॥
प्रत्येकं वदत स्वं स्वं सेवाकर्मेह सेवकाः ॥ ८२० ॥
इत्यापृष्टा स्तदा प्रोचुः सेवकाः स्वस्वकर्म तत् ॥
प्रसादान्नग्रहान्तं च तथा गोविन्ददासकः ॥ ८२१ ॥
तदाचार्यैः क्रमाचार्यैर्विज्ञातं यदनेन हि ॥
प्रभुर्गोविन्ददासेन रोषितो नात्र संशयः ॥ ८२२ ॥
प्रोक्तं भोस्ते प्रभोर्भोग्यं प्रसादान्नं महानसात्" ॥
तदोक्तं तेन भोः प्राज्ञा देवस्वं नाश्नुयामिति ॥ ८२३ ॥
तदभिज्ञायोक्तमार्यैः भोज्यं न स्तन्महानसात् ॥
तत्राप्युक्तं भो! गुरवो गुरुस्वं कथमश्नुयाम् ॥ ८२४ ॥
इत्याकर्ण्यातिनिर्बन्धवचनं तस्य ते तदा ॥
अनुवं स्तादिमां सेवामपि त्यज्य महामते! ॥ ८२५ ॥
इति श्रुत्वाऽत्यजत्सेवां क्षत्रियः सोप्यहं कृती ॥
तदैष गोविन्ददासोऽप्यगमन्मथुरां पुरीम् ॥ ८२६ ॥
केशवालय-सेवायां अध्यक्षत्वं समग्रहीत् ॥
मितद्रव्यानुरोधेन पुराध्यक्षपठानतः ॥ ८२७ ॥
सेवां केशवदेवस्य कुर्वन्नास्त स्म चित्रधा ॥

एकदा केशव विभोः शय्याकृत्याद्भुताऽमुना ॥ ८२८ ॥
सूक्ष्मसूत्रगुणैश्चित्रैर्वापिता वायकेन ह ॥
यस्यां श्रीकेशवविभुः स्वपिति स्म चतुर्भुजः ॥ ८२९ ॥
तादृक् सूत्रगुणैरेव पुराध्यक्षेण वापिता ॥
परं शय्या तथा नाभूच्छोभना यादृशी विभोः ॥ ८३० ॥
इति प्रोक्तं वायकेन शिल्पिना स पुराधिपः ॥
निशम्य यवनोऽवोचत्किमहो शिल्पिवायकः ॥ ८३१ ॥
मे शय्येयं न देवस्य केशवस्येव तर्ह्यहम् ॥
शय्यां केशवदेवस्य पश्येयं साम्य काम्यया ॥ ८३२ ॥
इत्यभिप्रेत्य यवनः सोश्वमारुह्यसत्वरम् ॥
मध्यान्हेन्तः सुप्तजनेन्तर्गतः केशवालये ॥ ८३३ ॥
विलोक्य शोभनां शय्यां स तत्रोपविवेश ह ॥
एतावता गतोऽकस्मात् तत्र गोविन्ददासकः ॥ ८३४ ॥
निशात गुप्तिकां शस्त्रीमानिन्ये स्वां कुतश्च न ॥
गत्वा तं भर्त्सयामास गालिसंदानपूर्वकम् ॥ ८३५ ॥
"उपविष्टः कथमरे ! पर्यंकेऽस्मत् प्रभोरिति" ॥
ब्रुवान्निष्काश्य तं गुप्त्या जघान यवनाधमम् ॥ ८३६ ॥
दृष्ट्वा हतं पतिस्तेन यवनानुचराश्चापि ॥
जघ्नुर्गोविन्ददासं तं स्वशस्त्रैराततायिनः ॥ ८३७ ॥
वैष्णवो गोविन्ददासो मृतः श्रीकेशवालये ॥
इत्यपृच्छत् कोऽपि वृत्तं श्रीमदाचार्यसंन्निधौ ॥ ८३८ ॥

भो महाराजाधिराज ! [illegible] वः ॥
गोविन्ददासस्य तस्य गतिरित्थं कथञ्चिति ॥ ८३९ ॥
तदाकर्ण्याचार्यवर्यैरुक्तं भोः शृणुताखिलाः ॥
इत्थं मृतस्यापि तस्य न हानिः परलोकनः ॥ ८४० ॥
अकथयत्वप्यठित यस्माऽऽज्ञानकृतास्माकमित्यतः ॥
इत्थं पृष्ठा तस्य मुक्तिः किमभद्रममुष्य तत् ॥ ८४१ ॥
स एव गोविन्ददासः पूर्वजन्मनि सौरभि ॥
नंदस्यालयनिर्माणे मृदम्बु समुवाह यः ॥ ८४२ ॥
यस्य पृष्ठे समारूढा नन्द सुनुरपिक्वचित् ॥
इत्येतद्वल्लभाचार्यैर्वचनामृतमादरात् ॥ ८४३ ॥
श्रोत्राञ्जलिभिरापीय सर्वे निःसंशयाः स्थिताः ॥ ८४४ ॥

॥ इति श्रीमद्वैष्णववार्ता मालायां एकोनविंशो मणिः ॥